अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

हनुमत् चरित्र वर्णन

सनत्कुमार उवाच

अथापरं वायुसूनोश्चरितं पापनाशनम्। यदुक्तं स्वासु रामेण आनन्दवनवासिना॥१॥

देवर्षि सनत्कुमार कहते हैं—अब हनुमान् का अन्य पापनाशक चरित्र श्रवण करिये। इसे स्वयं आनन्दवनवासी राम ने मुझसे कहा था।।१।।

सद्योजाते महाकल्पे श्रुतवीर्ये हनूमति। मम श्रीरामचन्द्रस्य भक्तिरस्तु सदैव हि॥२॥
शृणुष्व गदतो मत्तः कुमारस्य कुमारक। चरितं सर्वपापघ्नं शृण्वतां पठतां सदा॥३॥
वाञ्छाम्यहं सदा विप्र सङ्गमं कीशरूपिणा। रहस्यं रहसि स्वस्य ममानन्दवनोत्तमे॥४॥
परीतेऽत्र सखायो मे सख्यश्च विगतज्वराः।
क्रीडन्ति सर्वदा चात्र प्राकट्येऽपि रहस्यपि॥५॥
कस्मिंश्चिदवतारे तु यद्वत्तं च रहो मम। तदत्र प्रकटं तुभ्यं करोमि प्रीतमानसः॥६॥

श्रीराम कहते हैं—हे कुमार! महाकल्प में सद्यः उत्पन्न होने वाले अमित पराक्रमी हनुमान के प्रति मुझ श्रीरामचन्द्र की भक्ति सदा बनी रहे। मैं हनुमान के महत् चरित्र का वर्णन कर रहा हूं। यह चरित सुनने तथा पढ़ने से सदा सभी पापों का नाश करता है। हे विप्र! मैं तो सर्वदा कीशरूपी हनुमान का संग चाहता रहता हूं। वे इस उत्तम आनन्द वन में गोपनीयता से रहते हैं। इनके सिवाय यहां मेरे कतिपय सखा एवं सखियां यहां प्रकट तथा गुप्तरूपेण क्रीड़ारत रहते हैं। मेरे किसी अवतार के समय जो रहस्यमय घटना हुई थी, मैं उसे आपसे प्रसन्नता के साथ कहता हूं।।२-६।।

आविर्भूतोऽस्म्यहं पूर्वं राज्ञो दशरथक्षये। चतुर्व्यूहात्मकस्तत्र तस्य भार्यात्रये मुने॥७॥
ततः कतिपयैरब्दैरागतो द्विजपुङ्गवः। विश्वामित्रोऽर्थयामास पितरं मम भूपतिम्॥८॥
यक्षरक्षोविघातार्थं लक्ष्मणेन सहैव माम्। प्रेषयामास धर्मात्मा सिद्धाश्रममरण्यकम्॥९॥
तत्र गत्वाश्रममृषेर्दूषयन्तौ निशाचरौ।
ध्वस्तौ सुबाहुमारीचौ प्रसन्नोऽभूत्तदा मुनिः॥१०॥

पूर्वकाल में राजा दशरथ की तीन रानियां थीं। उनसे मैं चतुर्व्यूह रूप से अवतरित हुआ। (चतुर्व्यूह अर्थात् राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न)। तदनन्तर कतिपय वर्ष व्यतीत होने पर द्विजपुंगव विश्वामित्र ने मेरे पिता से मुझे मांगा। उन्होंने यक्ष, राक्षसों के वधार्थ लक्ष्मण के साथ मुझे वन में सिद्धाश्रम भेज दिया। वहां मैंने आश्रम को अपवित्र करने वाले सुबाहु, मारीच निशाचरों को ध्वस्त किया। अतः मुनि विश्वामित्र प्रसन्न हो गये।।७-१०।।

अस्त्रग्रामं ददौ मह्यं मासं चावासयत्तथा। ततो गाधिसुतो धीमान् ज्ञात्वा भाव्यर्थमादरात्॥११॥

मिथिलामनयत्तत्र रौद्रं चादर्शयद्धनुः। तस्य कन्यां पणीभूतां सीतां सुरसुतोपमाम॥१२॥

उन्होंने मुझे अनेक अस्त्र, शस्त्र प्रदान किया तथा एक मास मैंने (लक्ष्मण सहित) वहीं निवास किया। तत्पश्चात् भावी को जानकर धीमान् गाधिपुत्र विश्वामित्र आदर के साथ मुझे मिथिला लाये तथा वहां से रौद्र (शिव) धनुष को दिखलाया। उनकी कन्या देवकन्या के समान सीता नाम्नी थीं।।११-१२।।

धनुर्विभज्य समिति लब्धवान्मानिनोऽस्य च।
ततो मार्गे भृगुपतेर्दर्प्यमूढं चिरं स्मयन्॥१३॥
व्यपनीयागमं पश्चादयोध्यां स्वपितुः पुरीम्। ततो राज्ञाहमाज्ञाय प्रजाशीलनमानसः॥१४॥
यौवराज्ये स्वयं प्रीत्या सम्मन्त्र्याप्तैर्विकल्पितः।
तच्छ्रुत्वा सुप्रिया भार्या कैकयी भूपतिं मुने॥१५॥
देवकार्यविधानार्थं विदूषितमतिर्जगौ। पुत्रो मे भरतो नाम यौवराज्येऽभिषिच्यताम्॥१६॥
रामश्चतुर्दशसमा दण्डकान्प्रविवास्यताम्। तदाकर्ण्याहमुद्युक्तोऽरण्यं भार्यानुजान्वितः॥१७॥
गन्तुं नृपतिनानुक्तोऽप्यगमं चित्रकूटकम्। तत्र नित्यं वन्यफलैर्मांसैश्चावर्तितक्रियः॥१८॥

मैंने वहां धनुष को भंग करके उस सीता से विवाह किया। मैंने मार्ग में परशुराम का दर्प चूर्ण किया। तदनन्तर मैं अपने पिता की पुरी अयोध्या पहुंचा। उस समय राजा दशरथ ने मन्त्रियों से मन्त्रणा किया तथा प्रजा को मुझमें अनुरक्त जानकर मुझे यौवराज्यपद देना चाहा। हे मुने! यह सुन कर राजा की प्रिया भार्या कैकयी ने जिनकी बुद्धि देवगण ने देवकार्यार्थ विकृत कर दिया था, उन्होंने राजा से कहा कि "मेरे पुत्रभरत को आप युवराज पद प्रदान करें। राम को चौदह वर्ष दण्डकारण्य में रहने का आदेश दीजिये।" यह सुनकर पिता की सहमति न होने पर भी मैं पत्नी सीता तथा अनुज के साथ चित्रकूट चला आया। वहां हम तीनों वन्य फल तथा मांस भोजन द्वारा जीवन व्यतीत करने लगे।।१३-१८।।

निवसन्नेव राज्ञस्तु निधनं चाप्यवागमम्। ततो भरतशत्रुघ्नौ भ्रातरौ मम मानदौ॥१९॥
मातृवर्गयुतौ दीनौ साचार्यामात्यनागरौ। व्यजिज्ञपतमागत्य पञ्चवट्यां निजाश्रमम्॥२०॥
अकल्पयं भ्रातृभार्यासहितश्च त्रिवत्सरम्। ततस्त्रयोदशे वर्षे रावणो नाम राक्षसः॥२१॥
मायया हृदवान्सीतां प्रियां मम परोक्षतः। ततोऽहं दीनवदन ऋष्यमूकं हि पर्वतम्॥२२॥

मैं वन में था तभी मेरे पिता की मृत्यु हो गई। तब मेरे मानद भ्राता भरत तथा शत्रुघ्न माताओं के तथा आचार्य के साथ दीनतापूर्वक मन्त्रीगण तथा पुरवासीगण के साथ वहां आये तथा सब समाचार पंचवटी में मेरे आश्रम में आकर मुझसे कहा तथापि मैंने उन सबको वापस भेज दिया। वहां मैंने पत्नी तथा भाई के साथ तीन वर्ष व्यतीत किया। वनवास के तेरहवें वर्ष रावण नामक राक्षस ने मेरी पत्नी सीता को मेरे आश्रम में न रहने पर माया से हर लिया। तब मैं दीनता के साथ ऋष्यमूक पर्वत पहुंचा।।१९-२२।।

भार्यामन्वेषयन्प्राप्तः सख्यं हर्यधिपेन च। अथ वालिनमाहत्य सुग्रीवस्तत्पदे कृतः॥२३॥
सह वानरयूथैश्च साहाय्यं कृतवान्मम। विरुध्य रावणेनालं मम भक्तो विभीषणः॥२४॥
आगतो ह्यभिषिच्याशु लङ्केशो हि विकल्पितः। हत्वा तु रावणं संख्ये सपुत्रामात्यबान्धवम्॥२५॥

सीतामादाय संशुद्धामयोध्यां समुपागतः। ततः कालान्तरे विप्र सुग्रीवश्च विभीषणः॥२६॥
निमन्त्रितौ पितुः श्राद्धे षट्कुलाश्च द्विजोत्तमाः।
अयोध्यायां समाजग्मुस्ते तु सर्वे निमन्त्रिताः॥२७॥
ऋते विभीषणं तत्र चिन्तयाने रघूत्तमे। शम्भुर्ब्राह्मणरूपेण षट्कुलैश्च सहागतः॥२८॥
अथ पृष्टो मया शम्भुर्विभीषणसमागमे। नीत्वा मां द्रविडे देशे मोचय द्विजबन्धनात्॥२९॥
मया निमन्त्रिताः श्राद्धे ह्यगस्त्याद्या मुनीश्वराः।
सम्भोजितास्तु प्रययुः स्वस्वमाश्रममण्डलम्॥३०॥

वहां मैंने वानरराज सुग्रीव से मित्रता किया। बालि का वध करके उसके राज्य पर सुग्रीव को स्थापित किया। तदनन्तर वानरयूथ ने मेरी सहायता किया। वहां रावण के विरुद्ध मेरा भक्त विभीषण आया। मैंने विभीषण को लंकेश के पद पर अभिषिक्त किया। तब मैंने रावण को उसके बन्धु-बान्धव-पुत्र-आमात्यों सहित युद्ध में निहत कर दिया। सीता को शुद्ध करके अयोध्या लौटा। हे विप्र! कालान्तर में मैंने सुग्रीव तथा विभीषण को तथा अपने छः कुल को पितृ श्राद्धार्थ निमन्त्रित किया। विभीषण को छोड़कर श्राद्ध में सब लोग आये थे। मेरे षट्कुल के साथ ब्राह्मणरूपी शंकर भी आये। जब मैंने शंभु से विभीषण हेतु पूछा, तब शिव ने कहा सर्वप्रथम मुझे द्रविड़ प्रदेश ले जाकर द्विजबन्धन से मुक्त कराये। तदनन्तर मेरे द्वारा निमन्त्रित मुनीश्वरगण अगत्स्यादि मुनि ने सम्यक् रूप से भोजन किया तथा वे अपने-अपने आश्रम लौट गये।।२३-३०।।

ततः कालान्तरे विप्रा देवा दैत्या नरेश्वराः। गौतमेन समाहूताः सर्वे यज्ञसभाजिताः॥३१॥
ते सर्वे स्फाटिकं लिङ्गं त्र्यम्बकाद्रौ निवेशितम्।
सम्पूज्य न्यवंसस्तत्र देवदैत्यनृपाग्रजाः॥३२॥
तस्मिन्समाजे वितते सर्वैर्लिङ्गे समर्चिते। गौतमोऽप्यथ मध्याह्ने पूजयामास शङ्करम्॥३३॥

कालान्तर में गौतम ने यज्ञ समारोहार्थ विप्र, देव, दैत्य, राजाओं को यज्ञ सभा में आहूत किया। सब ने स्फटिक लिंग की प्रतिष्ठा कैलास पर्वत पर किया तथा उसे पूजित किया। गौतम ने भी मध्याह्न में शंकर लिंग की पूजा किया।।३१-३३।।

सर्वे शुक्लाम्बरधरा भस्मोद्धूलितविग्रहाः।
सितेन भस्मना कृत्वा सर्वस्थाने त्रिपुण्ड्रकम्॥३४॥
नत्वा तु भार्गवं सर्वे भूतशुद्धिं प्रचक्रमुः। हृत्पद्ममध्ये सुषिरं तत्रैव भूतपञ्चकम्॥३५॥
तेषां मध्ये महाकाशमाकाशे निर्मलामलम्।
तन्मध्ये च महेशानं ध्यायेद्दीप्तिमयं शुभम्॥३६॥

सभी लोग शुक्लवर्ण वस्त्र पहने थे। सभी ने शरीर में भस्म लगाया था। सभी ने सर्वस्थान पर त्रिपुण्ड्र लगाया था। सभी ने शिव के समक्ष प्रणत होकर भूतशुद्धि सम्पन्न किया। भूतशुद्धि हेतु हृत्कमल के मध्यगत छिद्र में पंच महाभूत का ध्यान करे। उसके मध्य में महाकाश आकाश में निर्मल अमल दीप्तिमय शुभ महेश का ध्यान करे।।३४-३६।।

अज्ञानसंयुतं भूतं समलं कर्मसङ्गतः। तं देहमाकाशदीपे प्रदहेज्ज्ञानवह्निना॥३७॥
आकाशस्यावृत्तिं चाहं दग्ध्वाकाशमथो दहेत्।
दग्ध्वाकाशमथो वायुमग्निभूतं तथा दहेत्॥३८॥
अब्भूतं च ततो दग्ध्वा पृथिवीभूतमेव च।
तदाश्रितान्गुणान्दग्ध्वा ततो देहं प्रदाहयेत्॥३९॥
एवं प्रदग्ध्वा भूतादिं देही तज्ज्ञानवह्निना। शिखामध्यस्थितं विष्णुमानन्दरसनिर्भरम्॥४०॥
सुशीतला ततो ज्वाला प्रशान्ता चन्द्ररश्मिवत्।
प्रसारितसुधारुग्भिः सान्द्रीभूतश्च सम्प्लवः॥४१॥
अनेन प्लावितं भूतग्रामं सञ्चिन्तयेत्परम्॥४२॥

अज्ञान से संयुत भूत मलपूर्ण हैं। कर्मसंयोग से शरीर निर्माण होता है। अतः शरीर का आकाशदीप रूप ज्ञानाग्नि में दहन कर्म करे। तब आकाश पर लगे आवरण को दग्ध करके आकाश को ही जलाये। तब वायु, अग्नि, पृथिवी तथा उनके गुणों को दग्ध करे। देह भी ज्ञानाग्नि से दग्ध करे। तदनन्तर देही शिखा स्थान के मध्य में विराजित विष्णु, शिव का ध्यान करे। विष्णु आनन्दरस निर्झर हैं। शिव तो चन्द्रकिरण के समान हैं। शिव के अंगों से उत्पन्न किरणों से अमृतविन्दु टपकता है। चन्द्ररश्मिवत् सुशीतल ज्वाला वहां उद्गत् होती है। वह सघन अमृत वर्षा करती है। उससे समस्त भूतसमूह आप्लावित हो जाता है। इसी प्रकार के अमृत से भूतग्राम को सिंचित करे।।३७-४२।।

इत्थं कृत्वा भूतशुद्धिं क्रियार्हो मर्त्यः शुद्धो जायते ह्येव सद्यः।
पूजां कर्तुं जप्यकर्मापि पश्चादेवं ध्यायेद्ब्रह्महत्यादिशुद्ध्यै॥४३॥
एवं ध्यात्वा चन्द्रदीप्तिप्रकाशं ध्यानेनारोप्याशु लिङ्गे शिवस्य।
सदाशिवं दीपमध्ये विचिन्त्य पञ्चाक्षरेणार्चनमव्ययं तु॥४४॥
आवाहनादीनुपचारांस्तथापि कृत्वा स्नानं पूर्ववच्छङ्करस्य।
औदुम्बरं राजतं स्वर्णपीठं वस्त्रादिच्छन्नं सर्वमेवेह पीठम्॥४५॥
अन्ते कृत्वा बुद्बुदाभ्यां च सृष्टिं पीठे पीठे नागमेकं पुरस्तात्।
कुर्यात्पीठे चोर्ध्वके नागयुग्मं देवाभ्याशे दक्षिणे वामतश्च॥४६॥
जपापुष्पं नागमध्ये निधाय मध्ये वस्त्रं द्वादशप्रातिगुण्ये।
सुश्वेतेन तस्य मध्ये महेशं लिङ्गाकारं पीठयुक्तं प्रपूज्यम्॥४७॥

यह भूतशुद्धि क्रिया करके मनुष्य तत्काल शुद्ध हो जाता है। भूतशुद्धि से ब्रह्महत्या प्रभृति दोषों का निवारण हो जाता है। तब पूजा-जप-ध्यान आदि करना चाहिये। तदनन्तर उन गौतमादि मुनिगण ने ध्यान द्वारा उस शिवलिंग में चन्द्रदीप्त प्रकाश को आरोपित किया था। तदनन्तर उन लोगों ने दीप में सदाशिव का चिन्तन करके पंचाक्षर मन्त्र द्वारा अव्यय शिव की पूजा किया। उन्होंने आवाहन, स्नान प्रभृति उपचार से पूजनोपरान्त

उस शिवलिंग को गूलर के काष्ठ तथा स्वर्ण रजत निर्मित एवं वस्त्राच्छादित पीठ पर स्थापित किया। तदनन्तर उन ऋषिगण ने बुलबुलों द्वारा सृष्ट एक-एक नाग को प्रति पीठ पर स्थापित किया। तब उन्होंने पीठ के ऊर्ध्व में तथा शंकर के दक्षिण-वाम पार्श्व में दो-दो नाग की स्थापना किया तथा नागों के बीच में जपाकुसुम पुष्प एवं द्वादश श्वेत वस्त्र रख दिया। वे सभी श्वेत वस्त्र थे। उसके मध्य में उन्होंने पीठयुक्त लिंगाकृति महेश की पूजा किया।।४३-४७।।

एवं कृत्वा साधकास्ते तु सर्वे दत्त्वा दत्त्वा पञ्चगन्धाष्टगन्धम्।
पुष्पैः पत्रैः श्रीतिलैरक्षतैश्चतिलोन्मिश्रैः केवलैश्च प्रपूज्य।।४८।।
धूपं दत्त्वा विधिसम्प्रयुक्तं दीपं दत्त्वा चोक्तमेवोपहारम्।
पूजाशेषं ते समाप्याथ सर्वे गीतं नृत्यं तत्र तत्रापि चक्रुः।।४९।।

यह करके सभी साधकों ने पञ्चगव्य तथा अष्टगन्ध, पुष्प, पत्र, श्रीतिल, तिलयुक्त, अक्षत से शिव की पूजा करके सविधि धूप तथा दीप प्रदान करके नाना उपहार प्रदान किया। तदनन्तर पूजा सम्पन्न होने पर उन लोगों ने वहां शिव के उद्देश्य से नृत्य-गीत आदि उत्सव भी किया।।४८-४९।।

कालेचास्मिन् सुव्रते गौतमस्य शिष्यः प्राप्तः शङ्करात्मेति नाम्ना।।५०।।
उन्मत्तवेषो दिग्वासा अनेकां वृत्तिमास्थितः।
क्वचिद्द्विजातिप्रवरः क्वचिच्चण्डालसन्निभः।।५१।।
क्वच्छिूद्रसमो योगी तापसः क्वचिदप्युत।
गर्जत्युत्पतते चैव नृत्यति स्तौति गायति।।५२।।

उसी समय वहां सुव्रत गौतम के शिष्य शंकरात्मा आये। व उन्मत्त वेश थे। वे दिगम्बर (वस्त्ररहित) थे। वे अनेक वृत्तियों में स्थित रहते थे। कभी उनकी वृत्ति द्विजप्रवर की रहती, कभी उनकी वृत्ति चाण्डाल जैसी हो जाती, कभी वे शूद्र जैसी, कभी योगी-तपस्वी जैसी वृत्ति ग्रहण कर लेते। कहीं वे उछलते, कहीं गर्जते, कभी नृत्य स्तुति तथा गायन करने लगते।।५०-५२।।

रोदिति शृणुतेऽत्युक्तं पतत्युत्तिष्ठति क्वचित्। शिवज्ञानैकसम्पन्नः परमानन्दनिर्भरः।।५३।।
सम्प्राप्तो भोज्यवेलायां गौतमस्यान्तिकं ययौ।
बुभुजे गुरुणा साकं क्वचिदुच्छिष्टमेव च।।५४।।
क्वचिल्लिहति तत्पात्रं तृष्णीमेवाभ्यगात्क्वचित्।
हस्तं गृहीत्वैव गुरोः स्वयमेवाभुनक्क्वचित्।।५५।।
क्वचिद् गृहान्तरे मूत्रं क्वचित्कर्दमलेपनम्।
सर्वदा तं गुरुर्दृष्ट्वा करमालम्ब्य मन्दिरम्।।५६।।
प्रविश्य स्वीयपाठे तमुपवेश्याप्यभोजयेत्। स्वयं तदस्य पात्रेण बुभुजे गौतमो मुनिः।।५७।।

कहीं रुदन करते, कभी कहीं स्पष्टतः श्रवण करते, तो कभी गिरते-उठते रहते। भोजन काल में वे गुरु

गौतम के निकट आते तो कभी जूठन ही खा लेते। कभी भोजन चाटते, कभी चुपचाप पलायन कर जाते। कभी गुरु के हाथ से भोजन करते, तो कभी स्वयं खाते। कभी गृह में मूत्र त्याग करते, कभी कीचड़ देह पर लिप्त करते। गुरु उनका हाथ पकड़कर सदा गृह के अन्दर ले जाते तथा अपने आसन पर आसीन कराकर भोजन कराते! गौतम ऋषि तो कभी उनके ही पात्र में भोजन ग्रहण करते!।।५३-५७।।

तस्य चित्तं परिज्ञातुं कदाचिदथ सुन्दरी। अहल्या शिष्यमाहूय भुङ्क्ष्वेति प्राह तं मुदा।
निर्दिष्टो गुरुपत्न्या तु बुभुजे सोऽविशेषतः॥५८॥
यथा पपौ हि पानीयं तथा वह्निमपि द्विज। कण्टकानन्नवद्भुत्त्वा यथापूर्वमतिष्ठत॥५९॥

कभी उनकी चित्तवृत्ति के परिज्ञानार्थ सुन्दरी अहल्या ने प्रसन्नता के साथ कहा—"तुम मेरे साथ ही भोजन करो। गुरुपत्नी के यह कहते ही शंकरात्मा ने बिना किसी प्रकार का प्रतिवाद किये यथेच्छ भोजन किया। वे जिस प्रकार जल पीते, तदनुरूप अग्निपान भी कर जाते। कंटकों का भोजन अन्नवत् करके भी वे यथापूर्व ही बने रहते।।५८-५९।।

पुरो हि मुनिकन्याभिराहूतो भोजनाय च। दिने दिने तत्प्रदत्तं लोष्टमम्बु च गोमयम्॥६०॥
कर्दमं काष्ठदण्डं च भुक्त्वा पीत्वाथ हर्षितः।
एतादृशो मुनिरसौ चण्डालसदृशाकृतिः॥६१॥
सुजीर्णोपानहौ हस्ते गृहीत्वा प्रलपन्हसन्। अन्त्यजोचितवेषश्च वृषपर्वाणमभ्यगात्॥६२॥
वृषर्वेशयोर्मध्ये दिग्वासाः समतिष्ठत। वृषपर्वा तमज्ञात्वा पीडयित्वा शिरोऽच्छिनत्॥६३॥

मुनि कन्यागण उनको बुलाती तथा उनको भोजनार्थ दिन-प्रतिदिन ढेला, गोबर, कीचड़ काष्ठ देतीं। वे उसी को खा-पीकर हर्षित रहते। इसी प्रकार मुनि शंकरात्मा चाण्डाल वेश में भग्न जूता हाथ में लेकर प्रलाप करते हंसते वृषपर्वा के यहां आये। वे वृषपर्वा तथा शिव के बीच नग्न खड़े हो गये। वृषपर्वा उनको पहचानने में असमर्थ रहे। अतः उन्होंने उन ऋषि को पीड़ित करते उनका शिरच्छेद ही कर दिया।।६०-६३।।

हते तस्मिन्द्विजश्रेष्ठे जगदेतच्चराचरम्। अतीव कलुषं ह्यासीत्तत्रस्था मुनयस्तथा॥६४॥
गौतमस्य महाशोकः सञ्जातः सुमहात्मनः।
निर्ययौ चक्षुषौ वारि शोकं सन्दर्शयन्निव॥६५॥
गौतमः सर्वदैत्यानां सन्निधौ वाक्यमुक्तवान्।
किमनेन कृतं पापं येन च्छिन्नमिदं शिरः॥६६॥
मम प्राणाधिकस्येह सर्वदा शिवयोगिनः।
ममापि मरणं सत्यं शिष्यच्छद्मा यतो गुरुः॥६७॥

उन द्विजश्रेष्ठ की मृत्यु होते ही चराचर जगत् अत्यन्त कलुषपूर्ण हो गया। तब मुनिगण तथा गौतम आदि महात्माओं को महाशोक हो गया। उनके नेत्रों से अश्रु बहने लगा। वे शोकसन्तप्त हो गये। उस समय उन्होंने समस्त दैत्यगण से कहा—"इन्होंने क्या पाप किया था। जो इनका शिरच्छेद कर दिया गया? मेरे प्राणाधिक प्रिय सर्वदा शिवयोगी का मरण मैंने देखा। अब शिष्य की तरह मेरा भी मरण निश्चित है।।६४-६७।।

शैवानां धर्मयुक्तानां सर्वदा शिववर्तिनाम्। मरणं यत्र दृष्टं स्यात्तत्र नो मरणं ध्रुवम्॥६८॥

तच्छ्रुत्वा ह्यसुराचार्यः शुक्रः प्राह विदाम्वरः।
एनं सञ्जीवयिष्यामि भार्गवशङ्करप्रियम्॥६९॥

किमर्थं म्रियते ब्रह्मन्पश्य मे तपसो बलम्। इति वादिनि विप्रेन्द्रे गौतमोऽपि ममार ह॥७०॥

"शैवगण धर्मयुक्त तथा सदा शिव के अनुगामी रहते हैं। जहां उनका मरण देखा जाय, वहां मेरा भी मरण ध्रुव निश्चित है।" ऋषि गौतम का कथन सुनकर महाज्ञानी असुराचार्य शुक्र ने कहा—"मैं इन शंकरप्रिय को जीवित कर देता हूं। हे ब्रह्मन्! आप क्यों मृत हो रहे हैं। आप मेरा तपबल देखिये।" शुक्राचार्य यह कह ही रहे थे, इतने में विप्रेन्द्र गौतम मृत हो गये!।।६८-७०।।

तस्मिन्मृतेऽथ शुक्रोऽपि प्राणांस्तत्याज योगतः।
तस्यैवं हतिमाज्ञाय प्रह्लादाद्या दितीश्वराः॥७१॥
देवा नृपा द्विजाः सर्वे मृता आसंस्तदद्भुतम्।
मृतमासीदथ बलं तस्य बाणस्य धीमतः॥७२॥
अहल्या शोकसन्तप्ता रुरोदोच्चैः पुनः पुनः।
गौतमेन महेशस्य पूजया पूजितो विभुः॥७३॥

वीरभद्रो महायोगी सर्वं दृष्ट्वा चुकोप ह। अहो कष्टमहोकष्टं महेशा बहवो हताः॥७४॥

गौतम को मृत देखकर शुक्राचार्य ने भी योग बल से प्राण त्याग दिया। उनकी मृत्यु का संवाद पाकर प्रह्लाद आदि दैत्यपति, देवता, नृप, द्विजादि सभी मृत हो गये। तभी धीमान् बाण का समस्त सैन्य भी मृत हो गया। यह अद्भुद् घटना थी। उधर शोकाकुला अहल्या भी इस घटना से अवगत होकर उच्च स्वर से रुदनरत हो गयीं। गौतम ने मृत्युपूर्व महेश्वर की पूजा करके विभु वीरभद्र का भी पूजन किया था। वे महायोगी यह देखकर अत्यन्त कुपित हो गये। वे कहने लगे—"अहो! महाकष्ट है। अनेक माहेश्वर मृत हो गये।"।।७१-७४।।

शिवं विज्ञापयिष्यामि तेनोक्तं करवाण्यथ।
इति निश्चित्य गतवान्मन्दराचलमव्ययम्॥७५॥
नमस्कृत्वा विरूपाक्षं वृत्तं सर्वमथोक्तवान्।
ब्रह्माणं च हरिं तत्र स्थितौ प्राह शिवो वचः॥७६॥

"मैं इस समाचार को भगवान् शिव से कहूंगा। उनका जो आदेश होगा, वही मेरा कर्त्तव्य होगा।" यह विचार करके वे वहां से अव्यग्र मन्दराचल पर गये। वहां उन्होंने विरूपाक्ष को प्रणाम करके उनसे पूर्ण वृत्तान्त वर्णन किया। तब भगवान् शिव ने वहां अपने निकट स्थित ब्रह्मा तथा विष्णु से कहा—।।७५-७६।।

मद्भक्तैः साहसं कर्म कृतं ज्ञात्वा वरप्रदम्।
गत्वा पश्यामि हे विष्णो सर्वं तत्कृतसाहसम्॥७७॥

इत्युक्त्वा वृषमारुह्य वायुना धूतचामरः। नन्दिकेन सुवेषेण धृते छत्रेऽतिशोभने॥७८॥

सुश्वेते हेमदण्डे च नान्ययोग्ये धृते विभो।
महेशानुमतिं लब्ध्वा हरिर्नागान्तके स्थितः॥७९॥
आरक्तनीलच्छत्राभ्यां शुशुभे लक्ष्मकौस्तुभः।
शिवानुमत्या ब्रह्मापि हंसरूढोऽभवत्तदा॥८०॥

भगवान् शिव कहते हैं—मेरे भक्तों ने अत्यन्त साहसिक कृत्य किया है। उनका यह कर्म वरप्रद है। हे विष्णु! वहां जाकर हमें उनका साहसिक कार्य अवलोकन करना चाहिये।'' तब शंकर वृषारूढ़ हो गये। वायुदेव उनको चामर से वीजित करने लगे। तभी नन्दी ने उन विभु पर वह छत्र लगाया जो स्वर्णदण्डमय था। अत्यन्त मनोहर एवं उज्वल था। उसे अन्य कोई भी धारण नहीं कर सकता था। महेश की आज्ञा के कारण विष्णु भी गरुड़ारूढ़ हो गये। वे श्रीवत्सांकित कौस्तुभमणिधारी थे। वे हरित, लाल तथा नीलवर्ण छत्र से शोभित हो गये। शिव की आज्ञा के कारण ब्रह्मा भी तत्काल हंस पर आरूढ़ हो गये।।७७-८०।।

इन्द्रगोपप्रभाकारच्छत्राभ्यां शुशुभे विधिः। इन्द्रादिसर्वदेवाश्च स्वस्ववाहनसंयुताः॥८१॥
अथ ते निर्ययुः सर्वे नानावाद्यानुमोदिताः।
कोटिकोटिगणाकीर्णा गौतमस्याश्रमं गताः॥८२॥
ब्रह्माविष्णुमहेशाना दृष्ट्वा तत्परमाद्भुतम्।
स्वभक्तं जीवयामास वामकोणनिरीक्षणात्॥८३॥

ब्रह्मा का छत्र इन्द्रगोप के समान रक्तवर्ण तथा प्रभायुक्त था। इन्द्रादि सभी देवता भी अपने वाहनों पर बैठकर विविध वाद्यवादन ध्वनि के बीच चल पड़े। कोटि-कोटि गणों से आवृत ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर गौतमाश्रम आये। वहां का परमाद्भुद दृश्य देखकर उन्होंने भक्त गौतम को अपनी वाम दृष्टिमात्र से जीवित कर दिया।।८१-८३।।

शङ्करो गौतमं प्राह तुष्टोऽहं ते वरं वृणु। तदाकर्ण्य वचस्तस्य गौतमः प्राह सादरम्॥८४॥
यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरो मम। त्वल्लिङ्गार्चनसामर्थ्यं नित्यमस्तु ममेश्वर॥८५॥
वृतमेतन्मया देव त्रिनेत्र श्रृणुचापरम्। शिष्योऽयं मे महाभागो हेयादेयादिवर्जितः॥८६॥
प्रेक्षणीयं ममत्वेन न च पश्यति चक्षुषा। न घ्राणग्राह्यं देवेश न पातव्यं न चेतरत्॥८७॥
इति बुद्ध्या तथा कुर्वन्स हि योगी महायशाः।
उन्मत्तविकृताकारः शङ्करात्मेति कीर्तितः॥८८॥
न कश्चित्तं प्रति द्वेषी न च तं हिंसयेदपि। एतन्मे दीयतां देव मृतानाममृतिस्तथा॥८९॥

यह देखकर शंकर ने गौतम से कहा—''मैं तुम्हारे प्रति प्रसन्न हूं। वर मांगो।'' उनका वचन सुनकर गौतम ने आदर पूर्वक कहा—''हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं तथा वर देना चाहते हैं, तब आपके लिंग पूजन की शक्ति मुझमें सदैव रहे। हे देव! अब दूसरा वर यह मांगता हूं कि यह महाभाग शिष्य हेय-उपादेय दोनों प्रकार के कर्मों से विवर्जित हैं। यह नेत्र से कुछ नहीं देखता, हे महेश! यह घ्राण से नहीं सूंघता। सब कुछ बुद्धि से करता है। यह महायशा योगी है। यह उन्मत्त, विकृताकार तथा शंकरात्मा नाम वाला है। यह किसी के प्रति द्वेष

अथवा हिंसा की भावना नहीं रखता। हे देव! इससे कोई द्वेष न करे तथा इसके प्रति कोई हिंसा न करे। जितने लोग मृत हो गये, सभी जीवित हो जायें। यही वर दीजिये।।८४-८९।।

तच्छ्रुत्वोमापतिः प्रीतो निरीक्ष्य हरिमव्ययः। स्वांशेन वायुना देहमाविशज्जगदीश्वरः॥९०॥

हरिरूपः शङ्करात्मा मारुतिः कपिसत्तमः।
पर्यायैरुच्यतेऽधीशः साक्षाद्विष्णुः शिवः परः॥९१॥

आकल्मेष प्रत्येक कामरूपमुपाश्रितः। ममाज्ञाकारको रामभक्तः पूजितविग्रहः॥९२॥

यह सुनकर उमापति ने प्रेमपूर्वक अव्यय हरि को देखा तथा वे अपने अंश वायुरूपेण जगदीश्वर के शरीर में प्रविष्ट हो गये। वे ही हरिरूप (वानररूप) शंकरात्मा पवनसुत हनुमान् हैं। वे पर्यायक्रमेण अधीश, साक्षात् विष्णु तथा शिव कहे गये हैं। ये प्रतिकल्प में स्वेच्छा से रूप धारण करते हैं। ये शिव के आज्ञावाहक, मेरे भक्त तथा महाबली हैं।।९०-९२।।

अनन्तकल्पमीशानः स्थास्यति प्रीतमानसः।
त्वया कृतमिदं वेश्म विस्तृतं सुप्रतिष्ठितम्॥९३॥
नित्यं वै सर्वरूपेण तिष्ठामः क्षणमादरात्।
समर्चिताः प्रयास्यामः स्वस्ववासं ततः परम्॥९४॥

तब शंकर ने प्रेम से कहा—तुम्हारा निर्मित मन्दिर अतीव विस्तृत तथा सुप्रतिष्ठित है। हम सभी नित्य इस मन्दिर में एक क्षण रहेंगे। तुम्हारी पूजा स्वीकार करके स्वस्थान गान करेंगे।।९३-९४।।

अथावभाषे विश्वेशं गौतमो मुनिपुङ्गवः। अयोग्यं प्रार्थयामीश ह्यर्थी दोषं न पश्यति॥९५॥
ब्रह्माद्यलभ्यं देवेश दीयतां यदि रोचते। अथेशो विष्णुमालोक्य गृहीत्वा तत्करं करे॥९६॥
प्रहसन्नम्बुजाभाक्षमित्युवाच सदाशिवः। क्षामोदरोऽसि गोविन्द देयं ते भोजनं किमु॥९७॥

स्वयं प्रविश्य यदि वा स्वयं भुंक्ष्व स्वगेहवत्।
गच्छ वा पार्वतीगेहं या कुक्षिं पूरयिष्यति॥९८॥

तब मुनिप्रवर गौतम ने विश्वेश से कहा—हे ईश्वर! मैं आपसे एक अयोग्य प्रार्थना करता हूं। प्रार्थना करने वाला अपना दोष स्वयं नहीं देखता। यदि आप प्रसन्न हैं, तब ब्रह्मा आदि के लिये भी दुर्लभ ऐसा वर दीजिये कि आप मेरे यहां भोजन करें।" गौतम की यह प्रार्थना सुनकर शिव ने विष्णु को देखकर उनका हाथ अपने हाथ में लिया था। उन्होंने हंसते हुये कमल नयन केशव से कहा—"हे गोविन्द! आपका उदर रिक्त लग रहा है। क्या मैं आपको भोजन प्रदान करूं अथवा आप अपने गृह जैसे मेरे गृह में भोजन ग्रहण करेंगे? अथवा आप पार्वती के यहां जायें। वे आपका उदर पूर्ण कर देगी"।।९५-९८।।

इत्युक्त्वा तत्करालम्बी ह्येकान्तमगमद्विभुः।
आदिश्य नन्दिनं देवो द्वाराध्यक्षं यथोक्तवत्॥९९॥
स गत्वा गौतमं वाथ ह्युक्तवान्विष्णुभाषणम्।
सम्पादयान्नं देवेशा भोक्तुकामा वयं मुने॥१००॥

यह कहकर शिव विष्णु का हाथ पकड़े ही एकान्त में चले गये। उन्होंने द्वार के अध्यक्ष नन्दी से कहा—"तुम जाओ तथा भोजन की व्यवस्था करो।" तब नन्दी ने गौतम से जाकर समस्त वृत्तान्त कहा। नन्दी ने गौतम से जाकर विष्णु का संवाद कहा—"हे मुनिवर! हम देवता भोजन करना चाहते हैं। अन्न का प्रबन्ध करिये"।।९९-१००।।

इत्युक्त्वैकान्तमगमद्वासुदेवेन शङ्करः। मृदुशय्यां समारुह्य शयितौ देवतोत्तमौ॥१०१॥

अन्योन्यं भाषणं कृत्वा प्रोत्तस्थतुरुभावपि।
गत्वा तडागं गम्भीरं स्नास्यन्तौ देवसत्तमौ॥१०२॥

कराम्बुपातमन्योन्यं पृथक्कृत्वोभयत्र च। मुनयो राक्षसाश्चैव जलक्रीडां प्रचक्रिरे॥१०३॥

अथ विष्णुर्महेशश्च जलपानानि शीघ्रतः।
चक्रतुः शङ्करः पद्मकिञ्जल्काञ्जलिना हरेः॥१०४॥

अवाकिरन्मुखे तस्य पद्मोत्फुल्लविलोचने। नेत्रे केशरसम्पातात्प्रमीलयत केशवः॥१०५॥

अत्रान्तरे हरे स्कन्धमारुरोह महेश्वरः। हर्युत्तमाङ्गं बाहुभ्यां गृहीत्वा संन्यमज्जयत्॥१०६॥

उन्मज्जयित्वा च पुनः पुनश्चापि पुनः पुनः।
पीडितः स हरिः सूक्ष्मं पातयामास शङ्करम्॥१०७॥

अथ पादौ गृहीत्वा तं भ्रामयन्विचकर्ष ह।
अताडयद्धरेर्वक्षः पातयामास चाच्युतम्॥१०८॥

अथोत्थितो हरिस्तोयमादायाञ्जलिना ततः।
शीर्षे चैवाकिरच्छम्भुमथ शम्भुरथो हरिः॥१०९॥

तदनन्तर वासुदेव तथा शंकर कोमल शय्या पर गये, जहां पर दोनों देवसत्तम परस्परतः बातचीत करते शयन करने लगे। जब निद्रा के उपरान्त दोनों देवता उठे, तब स्नानार्थ एक गंभीर तड़ाग में जाकर हाथों से एक दूसरे पर जल उछालने लगे। यह देखकर मुनिगण तथा राक्षसगण भी जलक्रीड़ा में लग गये। विष्णु तथा शंकर पद्मपत्र में जल लेकर उसका पान कर रहे थे। उसी बीच शंकर ने पद्मकेसर मिश्रित जल विष्णु के मुखकमले में छोड़ दिया। केशरयुक्त जल गिरने से केशव ने नेत्र बन्द कर लिया। तभी महेश्वर हरि के कन्धों पर आरूढ़ होकर उनके शिर को पुनः-पुनः जल में डुबोने लगे। इससे हरि पीड़ित हो गये। तभी शिव के पैरों को अच्युत ने पकड़ा तथा उनको घुमाने लगे। इस पर शिव ने अच्युत के वक्ष पर अपने चरणों का प्रहार किया। इस प्रहार से हरि गिर पड़े।।१०१-१०९।।

जलक्रीडैवमभवदथ चर्षिगणान्तरे। जलक्रीडासम्भ्रमेण विस्रस्तजटबन्धनाः॥११०॥

अथ सम्भ्रमतां तेषामन्योन्यजटबन्धनम्। इतरेतरबद्धासु जटासु च मुनीश्वराः॥१११॥

शक्तिमन्तोऽशक्तिमत आकर्षति च सव्यथम्।
पातयन्तोऽन्यतश्चापि क्रोशंतो रुदतस्तथा॥११२॥

अन्ततः हरि ने उठकर अंजलि में जल लिया तथा वह जल शिव के शिर पर गिराया। शंभु ने भी तब हरि के शीश पर जल छोड़ा। इधर हरि हर की जलक्रीड़ा चल रही थी, उधर ऋषिगण अपनी जटा का बन्धन खोलकर जलक्रीड़ा कर रहे थे। उन मुनियों की जटा खुली होने से परस्पतः उलझ सी जाती थी। उस समय सबल देह वाले ऋषि दुर्बल देह ऋषियों को खींचते तथा पीड़ित करते। इससे वे रुदन करने लगते।।११०-११२।।

एवं प्रवृत्ते तुमुले सम्भूते तोयकर्मणि। आकाशे वानरेशस्तु ननर्त च ननाद च॥११३॥

विपञ्चीं वादयन्वाद्यं ललितां गीतिमुज्जगौ।
सुगीत्या ललिता यास्तु आगयत विधा दश॥११४॥

शुश्राव गीतिं मधुरां शङ्करो लोकभावतः। स्वयं गातुं हि ललितं मन्दमन्दं प्रचक्रमे॥११५॥

स्वयं गायति देवेश विश्रामं गलदेशिकम्। स्वरं ध्रुवं समादाय सर्वलक्षणसंयुतम्॥११६॥

स्वधारामृतसंयुक्तं गानेनैवमपोनयन्। वासुदेवो मर्दलं च कराभ्यामप्यवादयत्॥११७॥

जब सभी लोग यह तुमुल जलक्रीड़ा कर रहे थे, तभी वानरेश मारुति आकाश में नाचने तथा नाद करने लगे। वे वीणा प्रभृति अन्य वाद्यों का वादन कर रहे थे। उन्होंने अपने ललित स्वर में दशविध गीतों का गायन किया। वे मन्द-मन्द गायन कर रहे थे। उस मधुर गीतिकाओं को सुनकर लोकभाव में शंकर भी ललित स्वर में मन्द-मन्द गायनरत हो गये। उस समय महेश्वर देव सर्वलक्षणान्वित विश्राम, गलदेशिका तथा ध्रुवस्वर में स्वधारामृत से युक्त गायन करने लगे तथा वासुदेव अपने हाथों से मर्दल बजाने लगे।।११३-११७।।

अम्बुजाङ्गश्चतुर्वक्रस्तुम्बुरुर्मुखरो बभौ। तानका गौतमाद्यास्तु गायको वायुजोऽभवत्॥११८॥

गायके मधुरं गीतं हनूमति कपीश्वरे। म्लानमम्लानमभवत्कृशाः पुष्टास्तदाभवन्॥११९॥

स्वां स्वां गीतिमतः सर्वे तिरस्कृत्यैव मूर्च्छिताः।
तूष्णीभूतं समभवद्देवर्षिगणदानवम्॥१२०॥

उस समय चतुर्मुख ब्रह्मा तुम्बुरु वाद्य (अर्थात् तानपूरा) वादन कर रहे थे। गौतमादि ऋषिगण ताल-राग मिला रहे थे। गायक तो वायुनन्दन थे ही। कपिराज हनुमान का गायन तथा मधुर गीत सुनकर म्लान वस्तु भी अम्लान हो गयी। कृश पुष्ट हो गई। यह गीत सुनकर वहां जो अन्य गायक थे, वे स्वयं को तिरस्कृत जानकर (अर्थात् वैसा उत्तम गायन न करने के कारण) मूर्च्छित हो गये। वहां उपस्थित देवता, देवर्षि तथा दानवगण मौन हो गये।।११८-१२०।।

एकः स हनुमान् गाता श्रोतारः सर्व एव तते। मध्याह्नकाले वितते गायमाने हनूमति।
स्वस्ववाहनमारुह्य निर्गताः सर्वदेवताः॥१२१॥

गानप्रियो महेशस्तु जग्राह प्लवगेश्वरम्। प्लवग त्वं मयाज्ञप्तो निःशङ्को बृषमारुह॥१२२॥

मम चाभिमुखो भूत्वा गायस्वानेकगायनम्।
अथाह कपिशार्दूलो भगवन्तं महेश्वरम्॥१२३॥

अब वहां तो यह स्थिति थी कि केवल हनुमान ही गायक थे तथा बाकी तब श्रोता थे। हनुमांन तो

मध्याह्न तक गायन ही करते जा रहे थे तथापि मध्याह्न समागत जानकर सभी देवता स्ववाहनारूढ़ होकर वहां से चले गये। अन्ततः गायनप्रिय महेश्वर ने हनुमान को पकड़ कर कहा—"हे कपि! तुम निःशंक होकर वृषारूढ़ हो जाओ। तब मेरी ओर अभिमुख होकर अनेक गाना सुनाओ।" तथापि कपि शार्दूल हनुमान् ने भगवान् महेश्वर से कहा—।।१२१-१२३।।

वृषभारोहसामर्थ्यं तव नान्यस्य विद्यते। तव वाहनमारुह्य पातकी स्यामहं विभो॥१२४॥
मामेवारुह देवेश विहङ्गः शिवधारणः। तव चाभिमुखं गानं करिष्यामि विलोकय॥१२५॥

हनुमान कहते हैं—इन वृष पर आरूढ़ होने का सामर्थ्य आप को ही है। अन्य को नहीं है। हे विभु! आपके वाहन पर आरोहण का अत्यन्त पातक मुझे होगा। हे देवेश! आप मेरे कन्धों पर आरोहण करिये। मैं आपको लेकर आकाश में उड़ने लगूंगा। तब मैं आपके अभिमुख गायन करूंगा, आप सुनियेगा।।१२४-१२५।।

अथेश्वरो हनूमन्तमारुरोह यथा वृषम्। आरूढे शङ्करे देवे हनुमत्कन्धरां शिवः॥१२६॥
छित्वा त्वचं परावृत्य सुखं गायति पूर्ववत्।
शृण्वन्गीतिसुधां शम्भुर्गौतमस्य गृहं ततः॥१२७॥
सर्वं चाप्यागतास्तत्र देवर्षिगणदानवाः। पूजिता गौतमेनाथ भोजनावसरे सति॥१२८॥
यच्छुष्कं दारुसम्भूतं गृहोपकरणादिकम्। प्ररूढमभवत्सर्वं गायमाने हनूमति॥१२९॥
तस्मिन्गाने समस्तानां चित्रं दृष्टिरतिष्ठत॥१३०॥

तब भगवान् उमापति जिस प्रकार से अपने वृष पर आरोहण करते थे, तदनुरूप उन्होंने हनुमान के स्कन्ध पर आरोहण किया। तदनन्तर पश्चिमाभिमुख होकर पवनपुत्र पूर्ववत् सुखपूर्वक गायन करने लगे। इस गीतिसुधा का पान करते-करते शम्भु गौतम ऋषि के गृह तक आ गये। वहां उस समय अन्य देवर्षिगण दानववादि का भी आगमन हो गया। तब गौतम ऋषि ने उन सबका स्वागतादि सम्पन्न करके उनसे भोजनार्थ प्रार्थना किया। उस समय का यह हाल था कि हनुमान का गायन सुनकर गृह के सभी काष्टनिर्मित उपकरण जो शुष्क थे, सजीव हो गये तथा जो श्रोतागण थे, वे सभी चित्र जैसे निःस्पन्द लग रहे थे!।।१२६-१३०।।

द्विबाहुरीशस्य पदाभिवन्दनः समस्तगात्राभरणोपपन्नः।
प्रसन्नमूर्तिस्तरुणाः सुमध्ये विन्यस्तमूर्द्धाञ्जलिभिः शिरोभिः॥१३१॥
शिरः कराभ्यां पतिगृह्य शङ्करो हनूमतः पूर्वमुखं चकार।
पद्मासनासीनहनूमतोऽञ्जलौ निधाय पादं त्वपरं मुखे च॥१३२॥
पादाङ्गुलीभ्यामथ नासिकां विभुः स्नेहेन जग्राह च मन्दमन्दम्।
स्कन्धे मुखे त्वन्सतले च कण्ठे वक्षः स्थले च स्तनमध्यम हृदि॥१३३॥
ततश्च कुक्षावथ नाभिमण्डले पादं द्वितीयं विदधाति चाञ्जलौ।
शिरो गृहीत्वाऽवनमय्य शङ्करः पस्पर्श पृष्ठं चिबुकेन सोऽध्वनि॥१३४॥
हारं च मुक्तापरिकल्पितं शिवो हनूमतः कण्ठगतं चकार॥१३५॥

उस समय हनुमान शम्भु की चरण वन्दना दोनों हाथों से कर रहे थे। उनका समस्त शरीर आभरणों से शोभित था। वे प्रसन्न मूर्त्ति, तरुण थे। उन्होंने हाथ जोड़कर मस्तक नत किया था। यह देखकर शंकर ने हनुमान का शिर पकड़ा तथा उनको पूर्वाभिमुख कर दिया। उन विभु ने अब एक चरण पद्मासनासीन हनुमान् की अंजलि पर रखा, द्वितीय चरण हनुमान् के मुख पर न्यस्त किया। उन्होंने अपने चरणों की उंगलियों से हनुमान की नासिका को स्नेहपूर्वक पकड़ लिया। अब जो चरण उन्होंने हनुमान की अंजलि पर रखा था, उसे उनके कंधे, मुख, कण्ठ, वक्ष, स्तनमध्य, हृदय, कुक्षि, नाभिमण्डल पर फिराते हुये पुनः उनकी अंजलि पर रख दिया। इसके पश्चात् अपना शिर नत करके शंभु ने अपने चिबुक से हनुमान की पीठ का स्पर्श करते हुये एक मुक्ताहार हनुमान के कण्ठ में धारण करा दिया।।१३१-१३५।।

अथ विष्णुर्महेशानमिदं वचनमुक्तवान्।
हनूमता समो नास्ति कृत्स्नब्रह्माण्डमण्डले॥१३६॥
श्रुतिदेवाद्यगम्यं हि पदं तव कपिस्थितम्।
सर्वोपनिषदव्यक्तं त्वत्पदं कपि सर्वुयुक्॥१३७॥
यमादिसाधनैर्योगैर्न क्षणं ते पदं स्थिरम्। महायोगिहृदम्भोजे परं स्वस्थं हनूमति॥१३८॥
वर्षकोटिसहस्त्रं तु सहस्त्राब्दैरथान्वहम्।
भक्त्या सम्पूजितोऽपीश पादो नो दर्शितस्त्वया॥१३९॥
लोके वादो हि सुमहाञ्छम्भुर्नारायणप्रियः।
हरिप्रियस्तथा शम्भुर्न तादृग्भाग्यमस्ति मे॥१४०॥

इसके पश्चात् विष्णु ने महेश्वर से कहा—"इन हनुमान् के समकक्ष समस्त ब्रह्माण्ड मण्डल में दूसरा कोई नहीं हैं। इसका कारण यह है कि आपका पद जो कि श्रुतियों तथा देवादि के लिये भी अगम्य है, उसे आपने इन कपि के ऊपर स्थित किया। सभी उपनिषदों में अव्यक्त तथा साररूप वह चरण हनुमान पर स्थित हुआ है। यम नियमादि साधन से भी महायोगी जन अपने हृदय कमल पर क्षणमात्र के लिये भी आपके जिन चरणों को स्थिर नहीं कर सकते, वही महायोगी हनुमान के हृदयकमल पर विराजमान रहा है। मैंने एक सहस्रकोटि तथा सहस्र वर्षों तक आपके चरणों की अर्चना भक्तिभाव से किया था, तथापि आपने अपने चरण का दर्शन मुझे नहीं कराया। लोक में यह बात प्रचलित है कि शंभु नारायण को प्रिय हैं तथा नारायण शंभु को प्रिय हैं, तथापि मैं ऐसा भाग्यशाली अपने को नहीं मान सकता!।।१३६-१४०।।

तच्छ्रुत्वा वचनं शम्भुर्विष्णोः प्राह मुदान्वितः।
न त्वंया सदृशो मह्यं प्रियोऽन्योऽस्ति हरे क्वचित्॥१४१॥
पार्वती वा त्यवा तुल्या वर्तते नैव भिद्यते। अथ देवाय महते गौतमः प्रणिपत्य च॥१४२॥
व्यजिज्ञपदमेयात्मन्देवैर्हि करुणानिधे। मध्याह्नोऽयं व्यतिक्रान्तो भुक्तिबेलाखिलस्य च॥१४३॥

मुदित शंभु ने विष्णु का कथन सुनकर कहा—"हे हरि! मुझे तुम्हारे समान प्रिय कोई नहीं है, तथापि पार्वती तुम्हारी ही तरह प्रिय तो हैं, तथापि वे तो मुझसे अभिन्न जो हैं!" तदनन्तर उन महान् देव से प्रणामोपरान्त

गौतम ने कहा—हे अमेयात्मा! करुणानिधि! मध्याह्न काल का समय है। भोजन काल बीतता जा रहा है।।१४१-१४३।।

अथाचम्य महादेवो विष्णुना सहितो विभुः। प्रविश्य गौतमगृहं भोजनायोपचक्रमे।।१४४।।

रत्नाङ्गुलीयैरथ नूपुराभ्यां दुकूलबन्धेन तडित्सुकाञ्च्या।
हारैरनेकैरथ कण्ठनिष्कयज्ञोपवीतोत्तरवाससी च।।१४५।।
विलम्बिचञ्चन्मणिकुण्डलेन सुपुष्पधम्मिल्लवरेण चैव।
पञ्चाङ्गगन्धस्य विलेपनेन बाह्वं गदैः कङ्कणकाङ्गुलीयैः।।१४६।।

यह सुनकर महादेव तथा विष्णु ने आचमन किया और भोजनार्थ उन्होंने गौतमगृह में प्रवेश किया। गौतम ने वहां समागत विभु को रत्नमुद्रिका, नूपुर, धोती, विद्युत्वत् चमकती काञ्ची, अनेक हार, स्वर्ण यज्ञोपवीत, उत्तरीय, वस्त्र, लटकते रत्नों वाले कुण्डल, पुष्प से सजी पगड़ी प्रदान किया। उन्होंने प्रभु को बाजूबन्द तथा कंकण से सजाकर पंचांगगन्ध का लेप लगाया।।१४४-१४६।।

अथो विभूषितः शिवो निविष्ट उत्तमासने। स्वसम्मुखं हरिं तथा नयवेशयद्वरासने।।१४७।।

देवश्रेष्ठौ हरीशौ तावन्योन्याभिमुखस्थितौ।
सुवर्णभाजनस्थान्नं ददौ भक्त्या स गौतमः।।१४८।।
त्रिंशतप्रभेदान्भक्ष्यांस्तु पायसं च चतुर्विधम्।
सुपक्वं पाकजातं च कल्पितं यच्छतद्वयम्।।१४९।।
अपक्वं मिश्रकं तद्वत्त्रिंशतं परिकल्पितम्।
शतं शतं सुकन्दानां शाकानां च प्रकल्पितम्।।१५०।।
पञ्चविंशतिधा सर्पिःसंस्कृतं व्यञ्जनं तथा।
शर्कराद्यां तथा चूतमोचाखर्जूरदाडिमम्।।१५१।।
द्राक्षेक्षुनागरङ्गं च मिष्टं पक्वं फलोत्करम्।
प्रियालकं जम्बुफलं विकङ्कतफलं तथा।।१५२।।
एवमादीनि चान्यानि द्रव्याणीशे समर्प्य च।
दत्त्वापोशानकं विप्रो भुञ्जध्वमिति चाब्रवीत्।।१५३।।
भुञ्जानेषु च सर्वेषु व्यजनं सूक्ष्मविस्तृतम्।
गौतमः स्वयमादाय शिवविष्णू अवीजयत्।।१५४।।

परिहासमथो कर्तुमियेष परमेश्वरः। पश्य विष्णो हनूमन्तं कथं भुङ्क्ते स वानरः।।१५५।।

इस प्रकार से शिव को सजाकर गौतम ने उत्तम आसन पर उनको आसीन कराया। अपने सम्मुख उन्होंन उत्तम आसन पर श्रीहरि को बैठाया। जब देवप्रवर हरि तथा हर परस्परतः अभिमुखीन होकर बैठ गये, तब गौतम भक्तिभाव के साथ उनको स्वर्णपात्रों में भोजन प्रदान करने लगे। ३० प्रकार का भक्ष्य, चार प्रकार

का पायस, दो सौ प्रकार का सुपक्व आहार, तीन प्रकार का पक्वापक्व भोजन, सौ प्रकार के कन्द तथा शाक, २५ प्रकार के घृत निर्मित व्यंजन, शर्करा, आम्र, कदली, खर्जूर, अनार, दाख, ईख, नारंगी, प्रियालक, जामुन, विकंकत फल तथा अन्य मीठे एवं सुपक्व फल और नाना प्रकार के आहार अर्पित किया। इस प्रकार के तथा अन्य प्रकार के भोजनादि द्रव्य अर्पित करके उन्होंने ईश्वर को जल अर्पित किया तथा प्रार्थना किया कि भोजन ग्रहण करिये। अब शिव प्रभृति सभी देवता भोजनरत हो गये। उस समय गौतम एक सुन्दर पंखा लेकर हरि-हर पर हवा करने लगे। तभी शंकर ने परिहास मुद्रा में विष्णु से कहा—"हे विष्णु! देखो वानर हनुमान् कैसे भोजन कर रहा है!"।।१४७-१५५।।

वानरं पश्यति हरौ मण्डकं विष्णुभाजने। चिक्षेप मुनिसङ्घेषु पयस्स्वपि महेश्वरः॥१५६॥

हनूमते दत्तावांश्च स्वोच्छिष्टं पायसादिकम्।
त्वदुच्छिष्टमभोज्यं तु तवैव वचनाद्विभो॥१५७॥

शिव का वचन सुनकर विष्णु कपिराज की ओर देखने लगे। तभी महेश्वर ने मुनिसमूह के सामने ही विष्णु के पात्र में मट्ठा उलट दिया तथा हनुमान को अपना उच्छिष्ट पायसादि प्रदान किया तथापि कपीश्वर ने पूछा—"प्रभो! शिव उच्छिष्ट निर्माल्यादि भोजन न करें, यह आपका ही वचन है।"।।१५६-१५७।।

अनर्हं मम नैवेद्यं पत्र पुष्पं फलादिकम्। मह्यं निवेद्य सकलं कूप एवं विनिःक्षिपेत्॥१५८॥

अभुक्ते त्वद्वचो नूनं भुक्ते चापि कृपा तव।
बाणलिङ्गे स्वयम्भूते चन्द्रकान्ते हृदि स्थिते॥१५९॥

चान्द्रायणसमं ज्ञेयं शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम्। भुक्तिवेलेयमधुना तद्वैरस्यं कथान्तरात्॥१६०॥

भुक्त्वा तु कथयिष्यामि निर्विशङ्कं विभुंक्ष्व तत्।
अथासौ जलसंस्कारं कृतवान् गौतमो मुनिः॥१६१॥

यह कथन सुनकर शिव ने कहा—"वास्तव में मेरा पत्र-पुष्प-फलादि नैवेद्य भोजन योग्य नहीं होता, वह वर्जित है। उससे समर्पणोपरान्त कूपादि में निःक्षेप करना चाहिये।" यह सुनकर हनुमान ने कहा—"यदि मैं आपका उच्छिष्ट ग्रहण नहीं करता, तब तो आपके वचन की अहवेलना होगी तथापि आपकी कृपा हो, तब मैं यह भोजन कर लूंगा।" यह वाक्य सुनकर शंकर कहने लगे—"मेरे स्वयम्भु लिंग तथा बाणलिंग का किंवा स्फटिक निर्मित लिंग का अथवा मुझे हृदय में स्थित करके जो मेरा उच्छिष्ट (नैवेद्य) ग्रहण करेगा, उसे चान्द्रायण व्रतफल लाभ होगा। अभी भोजन काल है। कथान्तर मत कहो। मैं भोजनोपरान्त सब प्रकट कर दूंगा। अभी निःशंक होकर भोजन करो।" जब सब ने भोजन सम्पन्न किया, तब गौतम ने सबको जल संस्कार कराया।।१५८-१६१।।

आरक्तसुस्निग्धसुसूक्ष्मगात्राननेकधाधौतसुशोभिताङ्गान्।
तडागतोयैः कतबीजघर्षितैर्विशोधितैस्तैः करकानपूरयत्॥१६२॥

नद्याः सैकतवदिकां नवतरां सञ्छाद्य सूक्ष्माम्बरैः,
शुद्धैः श्वेततरैरथोपरि घटांस्तोयेन पूर्णान्क्षिपेत्।

लिप्त्वा नालकजातिमास्तपुटकं तत्कौलकं कारिकाचूर्णं
चन्दनचन्द्ररश्मिविशदां मालां पुटान्तं क्षिपेत्।
यामस्यापि पुनश्च वारिवसनेनाशोध्य कुम्भेन
तत्चन्द्रग्रन्थिमथो निधाय बकुलं क्षिप्त्वा तथा पाटलम्॥१६३॥
शेफालीस्तबकमथो जलं च तत्र विन्यस्य प्रथमत एव तोयशुद्धिम्।
कृत्वाथो मृदुतरसूक्ष्मवस्त्रखण्डेनावेष्टेत्सृणिकमुखं च सूक्ष्मचन्द्रम्॥१६४॥
अनातपप्रदेशे तु निधाय करकानथ। मन्दवातसमोपेते सूक्ष्मव्यजनवीजिते॥१६५॥
सिञ्चेच्छीतैर्जलैश्चापि वासितैः सृणिकामपि।
संस्कृताः स्वायतास्तत्र नरा नार्योऽथवा नृपाः॥१६६॥

अब जलसंस्कार विधि कहते हैं—तनिक रक्तवर्ण चिकने तथा अनेक बार प्रक्षालित शोभित अंग वाले घटों को निर्मली जड़ी से स्वच्छ किये तालाब आदि के जल से पूर्ण करे। तब नदी के बालुकामय तट पर उत्तम बालू की वेदी बनाकर जलपूर्ण घट को उत्तम सूक्ष्म वस्त्र से आवरित करके स्थापित करे। घट पर चावल के चूर्ण से अथवा सिन्दूर आदि से चित्रण करके उस पर चन्द्ररश्मि के समान धवल माला को चन्दन चर्चित करके उसमें छोड़े। एक प्रहर पर्यन्त जल को शुद्ध करने के अनन्तर कर्पूरचूर्ण, मौलश्री पुष्प, पाटल पुष्प, शेफालिका को उसमें छोड़कर पुनः जल शुद्ध करे। (छानें)। अब घटों के मुख को जहां कर्पूर चूर्ण लिप्त अंकुश रखा हो, कोमल सूक्ष्म वस्त्र खण्ड से लपेटे। अब उन घटों को धूप रहित स्थान पर रखे। मन्दवायु वाले हल्के पंखों से हवा झलकर सुगंधित जल से घटमुख (अंकुश) भी सिंचित करे। वहां संस्कृत, स्वायत्त नर-नारी अथवा राजा का किंवा राजकुमारीगण का पूजन करना चाहिये।।१६२-१६६।।

तत्कन्या वा क्षालिताङ्गा धौतपादास्सुवाससः। मधुपिङ्गमनिर्यासमसान्द्रमगुरूद्भवम्॥१६७॥
बाहुमूले च कण्ठे च विलिप्यासान्द्रमेव च।
मस्तके जापकं न्यस्य पञ्चगन्धविलेपनम्॥१६८॥
पुष्पनद्धसुकेशास्तु ताः शुभाः स्युः सुनिर्मलाः।
एवमेवार्चिता नार्यं आप्तकुङ्कुमविग्रहाः॥१६९॥

वे नारीगण शरीर स्वच्छ करें। चरण प्रक्षालन करके उत्तम वस्त्र से सज्जित हों। वे रक्तिम किंवा भूरे रंग के गोद को बाहुमूल अथवा कण्ठ में लगाये। वे मस्तक पर मन्त्रजप के साथ पंचगन्ध का लेप करें।।१६७-१६८।।

युवत्यश्चारुसवङ्गियो नितरां भूषणैरपि। एतादृग्वनिताभिर्वा नरैर्वा दापयेज्जलम्॥१७०॥
तेऽपि प्रादानसमये सूक्ष्मवस्त्राल्पवेष्टनम्। अथ वामकरे न्यस्य करकं प्रेक्ष्य तत्र हि॥१७१॥
दोरिकान्यस्तमुन्मुच्य ततस्तोयं प्रदापयेत्।
एवं स कारयामास गौतमो भगवान्मुनिः॥१७२॥

उनके केश पुष्प से सज्जित रहें। तब उन पवित्र तथा निर्मल नारीगण की पूजा करें, जिनके देह पर केसर लिप्त हो। उन सुन्दरी युवतियों को उत्तम आभूषण प्रदान करें। उन पुरुष अथवा नारीगण से जल दिलवायें जो जल प्रदान काल में घट पर ढके हुये वस्त्र को कुछ लपेट दे किंवा दर्पण में घटों को देखकर घट की डोर खोल कर जल दे। एवंविध भगवान् मुनि गौतम ने जल संस्कार किया था।।१६९-१७२।।

महेशादिषु सर्वेषु भुक्तवस्तु महात्मसु। प्रक्षालितांघ्रिर्हस्तेषु गन्धोद्वर्तितपाणिषु॥१७३॥
उच्चासनसमासीने देवदवे महेश्वरे। अथ नीचसमासीना देवाः सर्षिगणास्तथा॥१७४॥

मणिपात्रेषु संवेष्ट्य पूगखण्डान्सुधूपितान्।
अकोणान्वर्तुलान्स्थूलानसूक्ष्मानकृशानपि॥१७५॥
श्वेतपत्राणि संशोध्य क्षिप्त्वा कर्पूरखण्डकम्।
चूर्णं च शङ्करायाथ निवेदयति गौतमे॥१७६॥
गृहाण देव ताम्बूलमित्युक्तवचने मुनौ।
कपे गृहाण ताम्बूलं प्रयच्छ मम खण्डकान्॥१७७॥

उवाच वानरो नास्ति मम शुद्धिर्महेश्वर। अनेकफलभोक्तृत्वाद्वानरस्तु कथं शुचिः॥१७८॥

तच्छ्रुत्वा तु विरूपाक्षः प्राह वानरसत्तमम्।
मद्वाक्यादखिलं शुद्ध्येन्मद्वाक्यादमृतं विषम्॥१७९॥
मद्वाक्यादखिला वेदा मद्वाक्याद्देवतादयः।
मद्वाक्याद्धर्मविज्ञानं मद्वाक्यान्मोक्ष उच्यते॥१८०॥
पुराणान्यागमाश्चैव स्मृतयो मम वाक्यतः।
अतो गृहाण ताम्बूलं मम देहि सुखण्डकान्॥१८१॥
हरिर्वामकरेणाधात्ताम्बूलं पूराखण्डकम्।
ततः पत्राणि सङ्गृह्य तस्मै खण्डान्समर्पयत्॥१८२॥

कर्पूरमग्रतो दत्तं गृहीत्वाभक्षयच्छिवः। देवे तु कृत्तताम्बूले पार्वती मन्दराचलात्॥१८३॥
जयाविजययोर्हस्तं गृहीत्वायान्मुनेर्गृहम्। देवपादौ ततो नत्वा विनम्रवदनाभवत्॥१८४॥

जब समस्त महेश आदि महात्माओं ने भोजन सम्पन्न कर लिया और हस्त-पाद प्रक्षालित कर लिया और हाथों में भोजनगन्ध नहीं रह गयी, तब देवाधिदेव शंकर सर्वाधिक उच्चासनासीन हो गये और ऋषि समूह एवं देवसमूह निम्नासनासीन हो गये। उस समय मणिरचित पात्रों में उत्तम सुपारी के टुकड़े जो गोल, स्थूल, असूक्ष्म तथा अकृश थे और ताम्बूल जो कपूर तथा मसाला से युक्त था, समक्ष रखकर महर्षि गौतम ने कहा—"देव! आप ताम्बूल ग्रहण करें।" तब महादेव ने हनुमान् से कहा—"हे कपि! तुम ताम्बूल ग्रहण करो तथा मुझे सुपारी खण्ड प्रदान करो।" हनुमान् ने कहा—"हे प्रभो! मैं (जलसंस्कार से) शुद्ध नहीं हो सकता। मैं अनेक फलों का भक्षण करने वाला वानर कैसे पवित्र हो सकूंगा?" तब प्रभु विरूपाक्ष ने उत्तर दिया—मेरे वाक्य से

समस्त शुद्ध हो जाता है। मेरे वाक्य से विष अमृत हो जाता है। मेरा वाक्य ही समस्त वेद, देवतादि, धर्म-विज्ञान, मोक्ष कहा गया है। पुराण, आगम स्मृति आदि सब मेरे वाक्य से ही हैं। अतः तुम ताम्बूल ग्रहण करो तथा मुझे सुपारी प्रदान करो। शंकर का आदेश सुनकर वानर हनुमान् ने वाम हाथ से ताम्बूल ग्रहण किया तथा सुपारी खण्ड महादेव को अर्पित कर दिया। कर्पूर तो पहले प्रदान किया गया था। अब कर्पूर एवं सुपारी का भक्षण भगवान् शिव ने कर लिया। तभी मन्दरपर्वत से पार्वती अपनी सखियों का हाथ पकड़े जया-विजया के साथ गौतमाश्रम में आ गयीं। उन्होंने प्रभु महेश्वर की चरण वन्दना किया तथा शिर विनम्रता से नत करके वहीं बैठ गयीं।।१७३-१८४।।

उन्नमय्यमुखं तस्या इदमाह त्रिलोचनः। त्वदर्थं देवदेवेशि अपराधः कृतो मया॥१८५॥

यत्त्वां विहाय भुक्तं हि तथान्यच्छृणु सुन्दरि।
यत्त्वां स्वमन्दिरे त्यक्त्वा महदेनो मया कृतम्॥१८६॥
क्षन्तुमर्हसि देवेशि त्यक्तकोपा विलोकय।
न बभाषेऽप्येवमुक्ता सारुन्धत्या विनिर्ययौ॥१८७॥

तथापि प्रभु त्रिलोचन ने देवी का मुख ऊपर उठाया और कहने लगे—"हे देवेश्वरी! मैंने तुम्हारे साथ यह अपराध किया है कि हे सुन्दरी! मैं तुमको वहीं छोड़कर यहां भोजनार्थ आ गया। यह जो मैं तुमको गृह छोड़कर यहां निमन्त्रणार्थ आ गया, इस घोर अपराध को क्षमा करो। क्रोध छोड़ों। अब मेरी ओर देखो।" तथापि पार्वती ने शंभु से कुछ नहीं कहा तथा वहां से वे अरुन्धती देवी के पास गमनोद्यत हो गयीं!।।१८५-१८७।।

निर्गच्छन्तीं मुनिर्ज्ञात्वा दण्डवत्प्रणनाम ह।
अथोवाच शिवा तं च गौतमं त्वं किमिच्छसि॥१८८॥
अथाह गौतमो देवीं पार्वतीं प्रेक्ष्य सस्मिताम्।
कृतकृत्यो भवेयं वै भुक्तायां मद्गृहे त्वयि॥१८९॥
ततः प्राह शिवा विप्रं गौतमं रचिताञ्जलिम्।
भोक्ष्यामि त्वद्गृहे विप्र शङ्करानुमतेन वै॥१९०॥
अथ गत्वा शिवं विंशे लब्धानुज्ञस्त्वरागतः।
भोजयामास गिरिजां देवीं चारुन्धतीं तथा॥१९१॥
भुक्त्वाथ पार्वती सर्वगन्धपुष्पाद्यलङ्कृता।
सहानुचर कन्याभिः सहस्राभिर्हरं यथा॥१९२॥
अथाह शङ्करो देवीं गच्छ गौतममन्दिरम्।
सन्ध्योपास्तिमहं कृत्वा ह्यागमिष्ये तवान्तिकम्॥१९३॥
इत्युक्त्वा प्रययौ देवी गौतमस्यैव मन्दिरम्।
सन्ध्यावन्दनकामास्तु सर्वं एव विनिर्गताः॥१९४॥

कृतसन्ध्यास्तडागे तु महेशाद्याश्च कृत्स्नशः।
अथोत्तरमुखः शम्भुर्न्यासं कृत्वा जजाप ह॥१९५॥

वहां से जाती हुई पार्वती को देखकर मुनि गौतम ने उनको दण्डवत् प्रणाम किया! तब उमा ने पूछा— "हे गौतम! तुम्हारी क्या इच्छा है?" तब मुनि ने मुस्कान युक्त पार्वती को देखकर कहा—"यदि आप मेरे यहां भोजन करती तब मैं कृतार्थ हो जाता।" यह सुनकर भगवती ने अंजलिबद्ध गौतम से कहा—"हे विप्र! मैं शिव से आज्ञा लेकर तभी तुम्हारे यहां भोजन करूंगी।" यह जानकर गौतम ने जाकर शिव की अनुमति प्राप्त किया। उन्होंने गिरिजा तथा देवी अरुन्धती को भोजन प्रदान किया। भोजनोपरान्त देवी पार्वती गंध-पुष्पादि से सज्जित होने पर हजारों सेविकाओं के साथ शंकर के पास गयीं तथापि शंकर ने कहा—"अभी तुम गौतमाश्रम जाओ। मैं सन्ध्योपासना करके तुम्हारे निकट आऊंगा।" शिव का वचन सुनकर पार्वती गौतमाश्रम गयीं। उधर सभी देवता भी सन्ध्यावन्दनार्थ बहिर्गत् हो गये। सभी ने तथा महेश्वर आदि ने तड़ाग के निकट जाकर सन्ध्या वन्दनानि किया। जब भगवान् शम्भु उत्तरमुख होकर न्यास तथा जप से निवृत्त हो गये।।१८८-१९५।।

अथ विष्णुर्महातेजा महेशमिदमब्रवीत्। सर्वैर्नमस्यते यस्तु सर्वैरेव समर्च्यते॥१९६॥
हूयते सर्वयज्ञेषु स भवान्किं जपिष्यति। रचिताञ्जलयः सर्वे त्वामेवैकमुपासिते॥१९७॥

तब महातेजवान् विष्णु ने महेश्वर से कहा—"जिनको सभी देवता नमस्कार करते हैं, सभी लोग जिनकी पूजा करते हैं तथा समस्त यज्ञ में जिनको आहुति प्रदत्त होती हैं, वे आप क्या जप करते हैं? सभी लोग तो हाथ जोड़कर आपकी ही उपासना करते हैं।"।।१९६-१९७।।

स भवान्देवदेवेशः कस्मै विरचिताञ्जलिः। नमस्कारादिपुण्यानां फलदस्त्वं महेश्वर॥१९८॥
तव कः फलदो वन्द्यः को वा त्वत्तोऽधिको वद।
तच्छ्रुत्वा शङ्करः प्राह देवदेवं जनार्दनम्॥१९९॥

हे देवेश! आप किसे हाथ जोड़ते हैं? हे महेश्वर! आप ही नमस्कार आदि पुण्यों के फलदाता हैं। आपको फल देने वाला कौन है? आपसे अधिक कौन है? वह कहिये? यह सुनकर शंकर ने देवदेव जनार्दन से कहा—।।१९८-१९९।।

ध्याये न किञ्चिद्गोविन्द नमस्ये ह न किञ्चन।
किन्तु नास्तिकजन्तूनां प्रवृत्त्यर्थमिदं मया॥२००॥
दर्शनीयं हरे चैतदन्यथा पापकारिणः। तस्माल्लोकोपकारार्थमिदं सर्वं कृतं मया॥२०१॥
ओमित्युक्त्वा हरिरथ तं नत्वा समतिष्ठत। अथ ते गौतमगृहं प्राप्ता देवर्षयस्तदा॥२०२॥

शंकर कहते हैं—"हे गोविन्द! न तो मैं कुछ ध्यान करता हूं, न तो नमस्कार ही करता हूं तथापि नास्तिकों को प्रवृत्त करने के लिये यह सब करता रहता हूं। हे हरि! इस प्रकारं स्वयं करके दिखलाना चाहिये अन्यथा लोग पापकर्मा हो जायेंगे। सभी लोकोपकारार्थ में यह करता हूं।" यह सुनकर श्रीहरि ने कहा— "आपका कथन उचित है। तदनन्तर श्रीहरि ने महेश्वर को प्रणाम किया! तब सभी देवता एवं ऋषिगण गौतम के आश्रम पहुंचे।।२००-२०२।।

सर्वे पूजामथो चक्रुर्देवदेवाय शूलिने। देवो हनूमता सार्द्धं गायन्नास्ते मुनीश्वर॥२०३॥
पञ्चाक्षरीं महाविद्यां सर्व एव तदाऽजपन्। हनुमत्करमालम्ब्य देवाभ्यां सङ्गतो हरः॥२०४॥
एकशय्यासमासीनौ तावुभौ देवदम्पती। गायन्नास्ते च हनुमास्तुम्बुरुप्रमुखास्तथा॥२०५॥

वहां सभी ने देवाधिदेव शिव की आराधना किया। हे मुनीश्वर! उस समय वे देवाधिदेव भी हनुमान् सहित गायन कर रहे थे। सभी देवता "नमः शिवाय" मन्त्र जप में निरत थे। तदनन्तर शिव ने हनुमान का हाथ पकड़ा तथा विष्णु के साथ पार्वती के पास आये। वहां शिव-पार्वती एक ही शय्या पर बैठ गये। उस समय हनुमान् तानपूरा आदि वाद्यों का वादन करते गायन करने लगे। वहां तुम्बुरु आदि प्रमुख गायक भी गायन करने लगे।।२०३-२०५।।

नानाविधविलासांश्च चकार परमेश्वरः। आहूय पर्वतीमीश इदं वाक्यमुवाच ह॥२०६॥
रचयिष्यामि धम्मिल्लमेहि मत्पुरतः शुभे।
देव्याह न च युक्तं तद्भर्त्ता शुश्रूषणं स्त्रियः॥२०७॥
केशप्रसाधनकृतावनर्थान्तरमापतेत्। केशप्रसाधने देव तत्त्वं सर्व न चेप्सितम्॥२०८॥
अथ बन्धे कृते पश्चादंसप्राप्तप्रमार्जनम्। ततश्चरमसंलग्न केशपुष्पादिमार्जनम्॥२०९॥
एतस्मिन्वर्तमाने तु महात्मानो यदागमन्। तदा किमुत्तरं वाच्यं तव देवादिवन्दित॥२१०॥

वहां परमेश्वर नाना प्रकार के विलास कर रहे थे। तभी महेश्वर ने पार्वती से कहा—"हे कल्याणी! मेरे निकट आओ। मैं तुम्हारे केश का जूड़ा बांधूंगा।" देवी ने यह सुनकर कहा "नहीं! पति द्वारा पत्नी की सेवा करना उचित नहीं है। हे देव! आप यदि मेरा केश प्रसाधन करेंगे, तब अनर्थ होगा। इस कार्य में विलम्ब होता है। इसमें बालों की लट संवारना, उसमें लगे पुराने पुष्प हटाना, पुनः पुष्पादि लगाना। तभी बीच में कोई महात्मा आ गया, तब हे देववन्दित! उसका उत्तर क्या होगा?।।२०६-२१०।।

नायान्ति चेदथ विभो भीतिर्नाशमुपैष्यति।
एवं हि भाषमाणां तां करेणाकृष्य शङ्करः॥२११॥
स्वोर्वोः संस्थापयित्वैव विस्रस्य कचबन्धनम्।
विभज्य च कराभ्यां स प्रससार नखैरपि॥२१२॥

"यदि कोई नहीं आता, तब भी मन में शंका लगी रहेगी कि कोई आ न जाये?" पार्वती ने यह कहकर शंकर को हाथों द्वारा अपनी ओर खींचा और उनका शिर अपने जांघ पर रखने के अनन्तर उनकी जटा को अपनी उंगलियों तथा नखों से संवारने सुलझाने लगीं।।२११-२१२।।

विष्णुदत्तां पारिजातस्रजं कचगतामपि।
कृत्वा धम्मिल्लमकरोदथ मालां करागताम्॥२१३॥
मल्लिकास्रजमादाय बबन्ध कचबन्धने। कल्पप्रसूनमालां च ब्रह्मदत्तां महेश्वरः॥२१४॥
पार्वतीवसने गूढगन्धाढ्ये च समाददात्। अथांसपृष्ठ संलग्नमार्जनं कृतवान् विभुः॥२१५॥

श्लथन्नीवेरधो देव्या वस्त्रवेष्टादधोगतः।
किमिदं देवि चेत्युक्त्वा नीवीबन्धं चकार ह॥२१६॥

तदनन्तर उनकी जटा सवांरने के उपरान्त उन्होंने विष्णु प्रदत्त पारिजात माला से उनका जूड़ा बांधकर उसमें मालती माला तथा ब्रह्मा प्रदत्त कल्पपुष्पों की माला को बांधा। तदनन्तर स्कन्ध एवं पृष्ठ पर आये बालों को झाड़ने के पश्चात् शिव ने उमा का नीवी बन्धन खींचते यह कहा—"देवी! यह क्या?" तथा उन्होंने नीवी बन्धन कस दिया।।२१३-२१६।।

नासाभूषणमेतत्ते सत्यमेव वदामि ते।
ततः प्राह शिवा शम्भुं स्मित्वा पर्वतनन्दिनी॥२१७॥
अहो त्वन्मन्दिरे शम्भो सर्ववस्तु समृद्धिमत्।
पूर्वमेव मया सर्वं ज्ञातप्रायमभूत्किल॥२१८॥
सर्वद्रविणसम्पत्तिर्भूषणैरवगम्यते। शिरो विभूषितं देव ब्रह्मशीर्षस्य मालया॥२१९॥
नरकस्य तथा माला वक्षःस्थलविभूषणम्।
शेषश्च वासुकिश्चैव सविषौ तव कङ्कणौ॥२२०॥
दिशोऽम्बरं जटा केशा भसितं चाङ्गरागकम्।
महोक्षो वाहनं गोत्रं कुलं चाज्ञातमेव च॥२२१॥

तब शंभु नासिका का आभूषण देते कहने लगे—"हे देवी! यह सत्य कहता हूं। यह तुम्हारी नासिका का आभूषण है। पहनो।" यह सुनकर मुस्कराती हुई पर्वत नन्दिनी पार्वती कहने लगी—"हे शम्भु! आपके निवास में कुछ भी न्यून नहीं है। यह मुझे पूर्व से ही ज्ञात है। देखिये आभूषण से ही व्यक्ति की धन-सम्पत्ति का ज्ञान होता है। आपका मस्तक तो ब्रह्मशीर्ष से कैसा भूषित है। मुण्डमाल से आपका वक्षस्थल सज्जित है। विषधर शेष तथा वासुकि आपके कंगन हैं। वस्त्र दिशायें हैं (आप दिक्वस्त्र हैं), नग्न हैं। आपका अंगलेप अंगराज तो भस्म है। वाहन तो वृष है। आपके वंश-गोत्र को कोई नहीं जानता!"।।२१७-२२१।।

ज्ञायेते पितरौ नैव निरूपाक्षं तथा वपुः।
एवं वदन्तीं गिरिजां विष्णुः प्राहातिकोपनः॥२२२॥
किमर्थं निन्दसे देवि देवदेवं जगत्पतिम्। दुष्प्राणा न प्रिया भद्रे तव नूनमसंयमात्॥२२३॥
यत्रेशनिन्दनं भद्रे तत्र नो मरणव्रतम्।
इत्युक्त्वाथ नखाभ्यां हि हरिश्छेत्तुं शिरो गतः॥२२४॥

"आपके पिता-माता को कोई नहीं जानता। आपके देह में दो की जगह तीन नेत्र हैं।" गिरिजा शिव से यह कह रही थीं, जिसे सुनकर विष्णु ने क्रोधान्वित होकर कहा—"हे देवी! आप देवदेव जगत्पति की निन्दा क्यों कर रही हैं? आप असंयम युक्त हैं। आपको अपने प्राणों की परवाह नहीं है क्या? हे भद्रे! जहां ईश्वर शिव की निन्दा होती है, वहां तो हमें मरणव्रत ग्रहण कर लेना ही उचित है।" यह कहकर श्री हरि अपने नख से भगवती का शिरच्छेद करने हेतु उद्यत हो गये!।।२२२-२२४।।

महेशस्तत्करं गृह्य प्राह मा साहसं कृथाः। पार्वतीवचनं सर्वं प्रियं मम न चाप्रियम्॥२२५॥

ममाप्रियं हृषीकेश कर्तुं यत्किञ्चिदिष्यते।
ओमित्युक्त्वाथ भगवांस्तूष्णीं भूतोऽभवद्धरिः॥२२६॥

तभी महेश ने विष्णु का हाथ पकड़कर कहा—"ऐसा साहस न करें। पार्वती का सभी कथन मेरे लिये प्रिय है। वह अप्रिय नहीं है। हे हृषीकेश! आप जो कर रहे हैं, वही मेरे लिये अप्रिय है!" शिव का कथन सुनकर 'सत्य है' कहकर भगवान् श्रीहरि मौन हो गये।।२२५-२२६।।

हनुमानथ देवाय व्यज्ञापयदिदं वचः। अर्थयामि विनिष्कामं मम पूजाव्रतं तथा॥२२७॥

पूजार्थमप्यहं गच्छे मामनुज्ञातुमर्हसि।
तच्छ्रुत्वा शङ्करो देवः स्मित्वा प्राह कपीश्वरम्॥२२८॥
कस्य पूजा क्व वा पूजा किं पुष्पं किं दलं वद।
को गुरुः कश्च मन्त्रस्ते कीदृशं पूजनं तथा॥२२९॥

एवं वदति देवेश हनुमान्नीतिसंयुतः। वेपमान समस्ताङ्ग स्तोतुमेवं प्रचक्रमे॥२३०॥

तदनन्तर हनुमान ने महादेव से कहा—"मैं निष्काम पूजा तथा व्रताचरण करूंगा। आप आज्ञा दीजिये।" यह सुनकर शंकर ने स्मित हास्य के साथ कपीश्वर से कहा—"तुम किसकी पूजा करोगे, कहां करोगे, पुष्प क्या होगा, कौन गुरु तथा क्या मन्त्र होगा, कैसी पूजा होगी?' देवेश शंभु का यह वचन सुनकर हनुमान् विनयावनत हो गये। उनके सभी अंग कम्पित हो उठे। वे प्रभु की स्तुति करने लगे।।२२७-२३०।।

नमो देवाय महते शङ्करायामितात्मने। योगिने योगिधात्रे च योगिनां गुरवे नमः॥२३१॥
योगगम्याय देवाय ज्ञानिनां पतये नमः। वेदानां पतये तुभ्यं देवानां पतये नमः॥२३२॥
ध्यानाय ध्यानगम्याय ध्यातॄणां गुरुवे नमः। अष्टमूर्ते नमस्तुभ्यं पशूनां पतये नमः॥२३३॥
अम्बकाय त्रिनेत्राय सोमसूर्याग्निचक्षुषे। सुभृङ्गराजधत्तूरद्रोणपुष्पप्रियस्य ते॥२३४॥
बृहतीपूगपुन्नागचम्पकादिप्रियाय च। नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु भूय एव नमोनमः॥२३५॥

हनुमान् कहते हैं—हे महान् देव, शंकर अमितात्मा! आप योगी, योगीगण के धाता तथा योगीगण के गुरु हैं। आपको प्रणाम! आप वेदपति, देवों के पति, ध्यान, ध्यानगम्य, ध्यान करने वालों के गुरु, अष्टमूर्त्ति, पशुपति, अम्बक तथा त्रिनेत्र हैं। आपके नेत्र हैं अग्नि, चन्द्र तथा सूर्य। आप भृंगराज, धतूरा तथा द्रोण पुष्पों के प्रिय, बृहती, पुन्नाग, चम्पा आदि के प्रिय हैं। आपको पुनः-पुनः अनेक बार नमस्कार है!।।२३१-२३५।।

शिवो हरिमथ प्राह मा भैषीर्वाद मेऽखिलम्।
ततस्त्यक्त्वा भयं प्राह हनुमान् वाक्यकोविदः॥२३६॥
शिवलिङ्गार्चनं कार्यं भस्मोद्धूलितदेहिना।
दिवा सम्पादितैस्तोयैः पुष्पाद्यैरपि तादृशैः॥२३७॥

देव विज्ञापयिष्यामि शिवपूजाविधिं शुभम्। सायंकाले तु सम्प्राप्ते अशिरःस्नानमाचरेत्॥२३८॥

क्षालितं वसनं शुष्कं धृत्वाचम्य त्रिरन्यधीः।
अथ भस्म समादाय आग्नेयं स्नानमाचरेत्॥२३९॥
प्रणवेन समामन्त्र्य अष्टवारमथापि वा।
पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण नाम्ना वा येन केनचित्॥२४०॥
सप्ताभिमन्त्रितं भस्म दर्भपाणिः समाहरेत्।
ईशानः सर्वविद्यानामुक्त्वा शिरसि पातयेत्॥२४१॥

यह सुनकर शिव ने कपीश्वर से कहा—"भय मत करो! तुमको जो इच्छा हो मुझसे कहो।" यह कथन सुनकर भय का त्याग करके वाक्य कोविद हनुमान् ने कहा—"हे देव! मैं कल्याणप्रदा शिवपूजा विधि कहता हूं। लिंगार्चन भस्म से लिप्त देह से करे। दिन में जलादि से पूजन करे। पुष्पादि से पूजा करे। अब मैं शुभा शुभपूजाविधि कहता हूं। सायंकाल में शिर भिंगाये बिना स्नानाचरण करे। भस्म को प्रणव से आठ बार मन्त्रित करके पंचाक्षरादि मन्त्र से सात बार मन्त्रित करना चाहिये। तदनन्तर कुशहस्त होकर 'ईशानः सर्वविद्यानां" इत्यादि कहकर शिर पर भस्म गिराये।"।।२३६-२४१।।

तत्पुरुषाय विद्महे मुखे भस्म प्रसेचयेत्।
अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो भस्म वक्षसि निक्षिपेत्॥२४२॥
वामदेवाय नमः इति गुह्यस्थाने विनिक्षिपेत्।
सद्योजातं प्रपद्यामि निक्षिपेदथ पादयोः॥२४३॥
उद्धूलयेत्समस्ताङ्गं प्रणवेन विचक्षणाः। त्रैवर्णिकानामुदितः स्नानादिविधिरुत्तमः॥२४४॥
शूद्रादीनां प्रवक्ष्यामि यदुक्तं गुरुणा तथा।
शिवेति पदमुच्चार्य भस्म सम्मन्त्रयेत्सुधीः॥२४५॥
सप्तवारमथादाय शिवायेति शिरस्यथ। शङ्कराय मुखे प्रोक्तं सर्वज्ञाय हृदि क्षिपेत्॥२४६॥
स्थाणवे नम इत्युक्त्वा मुखे चापि स्वयम्भुवे।
उच्चार्य पादयोः क्षिप्त्वा भस्म शुद्धमतः परम्॥२४७॥

'तत्पुरुषाय विद्महे' इत्यादि से मुख में "अघोरेभ्योऽथ" इत्यादि से वक्ष पर, "वामदेवाय नमः" से गुह्यपर, 'सद्योजातम्, प्रपद्यामि' इत्यादि से चरणों पर और 'ॐ' का उच्चारण करते सर्वाङ्ग भस्मलिप्त करे। यह द्विजों हेतु विधि है, जो उत्तम है। अब गुरु द्वारा कही गयी शूद्रादि हेतु विधि कहता हूं। 'शिव' नाम का ७ बार जप करके भस्म को मंत्रित करे। शिवाय नमः से शिर में, शंकराय नमः से मुख में, 'सर्वज्ञाय नमः' द्वारा हृदय में, 'स्थाणवे नमः' द्वारा पुनः मुख में, 'स्वयंभुवे नमः' द्वारा चरणों पर तथा नमः शिवाय द्वारा सम्पूर्ण अंगों पर भस्म लिप्त करे। तब हाथ-पैर धोकर समाहित साधक कुशग्रहण करे।।२४२-२४७।।

नमः शिवायेत्युच्चार्य सर्वाङ्गोद्धूलनं स्मृतम्।
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य दर्भपाणिः समाहितः॥२४८॥

दर्भाभावे सुवर्णं स्यात्तदभावे गवालुकाः।
तदभावे तु दूर्वाः स्युस्तदभावे तु राजतम्॥२४९॥
सन्ध्योपास्तिं जपं देव्याः कृत्वा देवगृहं व्रजेत्।
देववेदीमथो वापि कल्पितं स्थण्डिलं तु वा॥२५०॥
मृण्मयं कल्पितं शुद्धं पद्मादिरचनायुतम्। चातुर्वर्णकरं गैश्च श्वेतेनैकेन वा पुनः॥२५१॥
विचित्राणि च पद्मानि स्वस्तिकादि तथैव च। उत्पलादिगदाशङ्खत्रिशूलडमरूंस्तथा॥२५२॥
शरोक्तपञ्चप्रासादं शिवलिङ्गमथैव च। सर्वकामफलं वृक्षं कुलकं कोलकं तथा॥२५३॥
षट्कोणं च त्रिकोणं च नवकोणमथापि वा।
कोणे द्वादशकान्दोलापादुकाव्यजनानि च॥२५४॥
चामरच्छत्रयुगलं विष्णुब्रह्मादिकांस्तथा। चूर्णैर्विरचयेद्वेद्यां धीमान्देवालयेऽपि वा॥२५५॥

दर्भ (कुश) न मिले तब स्वर्ण ग्रहण करे। वह भी न मिले तब गोरोचन ग्रहण करे। उसका भी अभाव रहे, तब दूर्वा ग्रहण करे। दूर्वा भी न मिले तब रजत लेना चाहिये। तत्पश्चात् शिवालय में जाये। वहां देववेदी को मिट्टी से बनाये। वहां गेरु किंवा श्वेतचूर्ण द्वारा शुद्ध पद्मादि की रचना करे। नाना प्रकार के पद्म, स्वस्तिक, उत्पल, गदा, शंख, त्रिशूल डमरु, पंचप्रासाद, शिवलिंग, सर्वकामदायक वृक्ष, कुलक (शिल्पी), कोलक (वीणा), षट्कोण, त्रिकोण, नवकोण, द्वादशकोण, दोला, पादुका, पंखा, चामर, छत्र, विष्णु तथा ब्रह्मादि देवता—ये सभी चित्र निर्माण करे। धीमान् साधक वेदी में अथवा देवालय में इनकी रचना करे।।२४८-२५५।।

यत्रापि देवपूजा स्यात् तत्रैवं कल्पयेद्बुधः।
स्वहस्तरचितं मुख्यं क्रीतं चैव तु मध्यमम्॥२५६॥
याचितं तु कनिष्ठं स्याद्बलात्कारमथोऽधमम्।
अर्हेषु यत्त्वनर्हेषु बलात्कारात्तु निष्फलम्॥२५७॥

जहां भी देवपूजन करना हो, वहीं सुधी साधक ऐसी रचना करे। स्वहस्त से रचित उत्तम है। द्रव्य देकर अन्य द्वारा रचित मध्यम है। याचना करके रचित कराया गया कनिष्ठ है परन्तु बलपूर्वक किसी से रचना कराना अधम है। जो वांछित कर्म है अथवा अवांछित कर्म है, वह बलपूर्वक कराने से निष्फल हो जाता है।।२५६-२५७।।

रक्तशालिजपाशाणकलमासिरक्तकैः। ततन्दुलैर्व्रीहिमात्रोत्थैः कणैश्चैव यथाक्रमम्॥२५८॥
उत्तमैर्मध्यमैश्चैव कनिष्ठैरधमैस्तथा। पद्मादिस्थापनैरेव तत्सम्यग्यागमाचरेत्॥२५९॥
प्रागुत्तरमुखो वापि यदि वा प्राङ्मुखो भवेत्।
आसनं च प्रवक्ष्यामि यथादृष्टं यथा श्रुतम्॥२६०॥

लाल चावल, जवापुष्प, शाण, कमलीधान्य, सामान्य धान्य के कण से यथाक्रम यज्ञ करे। उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ एवं अधम श्रेणी वाले पद्मों को स्थापित करके तब सम्यक् रूप से याग करे। पूर्व किंवा उत्तरमुख

होकर अथवा पूर्वोत्तर मुख होकर यागादि कर्म करे। अब मैंने जैसे श्रवण किया अथवा देखा है, तदनुसार आसन की व्यवस्था का वर्णन करता हूं।।२५८-२६०।।

कौशं चार्मं चैलतल्पे दारवं तालपत्रकम्।
काम्बलं काञ्चनं चैव राजतं ताम्रमेव च॥२६१॥
गोकरीषार्कजैर्वापि ह्यासनं परिकल्पयेत्। वैयाघ्रं रौरवं चैव हारिणं मार्गमेव च॥२६२॥
चार्मं चतुर्विधं ज्ञेयमथ बन्धुकमेव च। यथासम्भवमेतेषु ह्यासनं परिकल्पयेत्॥२६३॥
कृतपद्मासनो वापि स्वस्तिकासन एव च।
दर्भभस्मसमासीनः प्राणानायम्य वाग्यतः॥२६४॥
तावत्स देवतारूपो ध्यानं चान्तः समाचरेत्।
शिखान्ते द्वादशाङ्गुल्ये स्थितं सूक्ष्मतनुं शिवम्॥२६५॥
अन्तश्चरन्तं भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखम्। सर्वाभरणसंयुक्तमणिमादिगुणान्वितम्॥२६६॥

कुश, चर्म, वस्त्र, तल्प, लकड़ी, तालपत्र, कम्बल, स्वर्ण, चांदी, ताम्र, गोमय तथा मदार के काष्ठ का आसन बनाये। व्याघ्र, रुरुमृग, हरिण, मृगचर्म से आसन बनाये। बन्धूक काष्ठ का भी आसन कहा गया है। कुश तथा भस्म धारण करके मौनी स्थिति में प्राणायाम करे। पद्मासन अथवा स्वस्तिकासन लगाकर बैठे। अब स्वयं भावना से देवरूप होकर ध्यान करे। ध्यान—मेरे द्वादश अंगुलि माप वाले शिखा के अन्त में सूक्ष्म देह, प्राणीगण ही हृदयगुहा में निवास करने वाले, सब ओर मुंह वाले, समस्त आभरणों एवं अणिमादि सिद्धियों से गुणी होकर शंकर विराजमान हैं।।२६१-२६६।।

ध्यात्वा तं धारयेच्चिते तद्दीप्त्या पूरयेत्तनुम्।
तया दीप्त्या शरीरस्थं पापं नाशमुपागतम्॥२६७॥
स्वर्णपादैरसम्पर्कादृक्तं श्वेतं यथा भवेत्। तद्द्वादशदलावृत्तमष्ट पञ्च त्रिरेव वा॥२६८॥
परिकल्प्यासनं शुद्धं तत्र लिङ्गं निधाय च।

अब ध्यान के पश्चात् चित्त में उन्हें धारण करे। तत्पश्चात् उनके प्रकाश से साधक स्वदेह को प्रकाशित करे। इस विधि द्वारा शरीरस्थ पातक नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर स्वर्ण का १२, ४, ५ अथवा ३ पत्र का कमल बनाकर उस पर शिवलिंग स्थापित करे। तदनन्तर गुहास्थित महेश्वर, लिंगेश्वर का सदा चिन्तन करे।।२६७-२६९।।

गुहास्थितं महेशानं लिङ्गेशं चिन्तयेत्तथा॥२६९॥
शोधिते कलशे तोयं शोधितं गन्धवासितम्।
सुगन्धपुष्पं निक्षिप्य प्रणवेनाभिमन्त्रितम्॥२७०॥
प्राणायामश्च प्रणवः शूद्रेषु न विधीयते।
प्राणायामपदे ध्यानं शिवेत्योङ्कारमन्त्रितम्॥२७१॥

पवित्र घट में सुवासित जल तथा सुगन्धपुष्प निक्षिप्त करके प्रणवोच्चारण द्वारा जल को अभिमन्त्रित करना चाहिये तथापि शूद्रगण प्रणवोच्चारण न करे। वे प्राणायाम भी न करे। वे प्राणायाम के स्थान पर ध्यान करे। प्रणव के स्थान पर 'शिव' शब्दोच्चारण करे।।२७०-२७१।।

गन्धपुष्पाक्षतादीनि पूजाद्रव्याणि यानि च।
तानि स्थाप्य समीपे तु ततः सङ्कल्पमाचरेत्॥२७२॥
शिवपूजां करिष्यामि शिवतुष्ट्यर्थमेव च।
इति सङ्कल्पयित्वा तु तत आवाहनादिकम्॥२७३॥
कृत्वा तु स्नानपर्यन्तं ततः स्नानं प्रकल्पयेत्। नमस्तेत्यादिमन्त्रेण शतरुद्रविधानतः॥२७४॥
अविच्छिन्ना तु या धारा मुक्तिधारेति कीर्तिता।
तया यः स्नापयेन्मासं जपन्रुद्रमुखांश्च वा॥२७५॥
एकवारं त्रिवारं च पञ्च सप्त नवापि वा। एकादश तथा वारमथैकादशधान्वितम्॥२७६॥
मुक्तिस्नानमिदं ज्ञेयं मासं मोक्षप्रदायकम्।
शैवया विद्यया स्नानं केवलं प्रणवेन वा॥२७७॥
मृण्मयैर्नालिकेरस्य शकलैश्चोर्मिभिस्तथा।
कांस्येन मुक्ताशुक्त्या च पुष्पादिकेसरेण वा॥२७८॥

अब संकल्प करे। मन्त्र है—मैं गन्ध, पुष्प, अक्षत प्रभृति पूजा द्रव्यों को लिंग के निकट स्थापित करके शिव को सन्तुष्ट करने हेतु शिवपूजा करूंगा।" यह संकल्प करने के उपरान्त आवाहनादि करके स्नान पर्यन्त 'नमस्ते' इत्यादि मन्त्रों द्वारा शतरुद्री विधानानुरूप स्नान कराये। जलधारा अविच्छिन्न रहे। यही मुक्ति धारा है। इस धारा के द्वारा एक मास पर्यन्त शिव स्नान कराना चाहिये। १, ३, ५, ७, ९ अथवा ११ बार स्नान का नाम मुक्तिस्नान कहा गया है। एक मास तक जो मुक्तिस्नान कराता है, उसे मोक्षलाभ होता है। यह स्नान शैव मन्त्र से किंवा केवल प्रणव मन्त्र से कराये।।२७२-२७८।।

स्नापयेद्देवदेवेशं यथासम्भवमीरितैः।
शृङ्गस्य च विधिं वक्ष्ये स्नानयोग्यं यथा भवेत्॥२७९॥
पूर्वमन्तस्तु संशोध्य बहिरन्तस्तु शोधयेत्।
सुस्निग्धं लघु कृत्वाथ नाङ्गं छिन्द्यात्कथञ्चन॥२८०॥
नीचैकदेशविन्यस्तद्वारद्रोण्या सुहृत्तया। कृशानुयुक्तं स्नानं तु देवाय परिकल्पयेत्॥२८१॥

मृत्तिका, नारिकेल, कांसा, मोती अथवा सीप के पात्र से पुष्प केशर मिश्रित जलद्वारा महेश को स्नान कराये। अब मैं शृंग का विधान कहता हूं, जिससे वह स्नान योग्य हो जाये। शृंग के भीतर की ओर तथा बाहर की ओर स्वच्छ करके उसे स्निग्ध बनाये। वह कहीं से भग्न कटा न हो। उसका नुकीला नीचे का भाग ऐसा हो, जिससे जल की सूक्ष्म धारा सदा गिरती रहे। कुश हस्त होकर ही देवता को स्नान कराये।।२७९-२८१।।

एवं गवयशृङ्गस्य जलपूर्तिरथोच्यते। द्वारे निषिद्धलोहार्द्धसन्धिद्वारासमन्विते॥२८२॥
योगवक्रं नागदण्डं नागाकारं प्रकल्पयेत्।
फलस्थाने तु चषकं दण्डेन समरन्ध्रकम्॥२८३॥
तत्रैव पातयेत्तोयं मूर्द्धयन्त्रघटे स्थितम्। पातयेदथ चान्येन वामेनैव करेण वा॥२८४॥
मुक्तिधारा कृता तेन पवित्रं पापनाशनम्। एवं संस्नाप्य देवेशं पञ्चगव्यैस्तथैव च॥२८५॥
पञ्चामृतैरथ स्नाप्य मधुरत्रितयेन च। विभूष्य भूषणैर्देवं पुनः स्नाप्य महेश्वरम्॥२८६॥

नरगवय के शृंग को जलपूर्त्ति हेतु विहित कहा गया है। शृंग के मुख पर तथा सन्धि पर विहित धातु को मढ़े। वह शृंग योग-वक्र (टेढ़ा), नागदण्डाकृति अथवा नागाकार हो। उसके अग्रभाग प्याले जैसा चौड़ा हो। अन्त में छिद्र हो। इसी छिद्र के द्वारा शिवलिंग पर स्थापित घट से जल गिरे। शृंग को वाम किंवा दक्षिण हाथ से पकड़कर उसमें घट का जल गिराये। शिव को मुक्तिधारा स्नान कराने वाला साधक पवित्र तथा पापरहित हो जाता है। देवदेव को नहलाकर पंचगव्य तथा त्रिमधुर जल से नहलाये। उनको विभूषणादि से भूषित करके पुनः नहलाया जाये।।२८२-२८६।।

शीतोपचारं कृत्वाथ तत आचमनादिकम्। वस्त्रं तथोपवीतं च गन्धद्रव्यकमेव च॥२८७॥
कर्पूरमगरुं चापि पाटीरमथवा भवेत्। उभयमिश्रितं चापि शिवलिङ्गं प्रपूजयेत्।
कृत्स्नं पीठं गन्धपूर्णं यद्वा विभवसारतः।
तूष्णीमथोपचारं वा कालीयं पुष्पमेव च॥२८८॥
श्रीपत्रमरुचित्याज्यं यथाशक्त्यखिलं यथा।
अनेकद्रव्यधूपं च गुग्गुलं केवलं तथा॥२८९॥
कपिलाघृतसंयुक्तं सर्वधूपं प्रशस्यते। धूपं दत्वा यथाशक्ति कपिलाघृतदीपकान्॥२९०॥

शीतोपचार आचमनादि के उपरान्त वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्धद्रव्यादि, कर्पूर, अगुरु, चन्दनादि को मिलाकर शिवलिंग पूजन करे। सम्पूर्ण पीठ को सुगन्ध से सुवासित करे। अपनी धनशक्ति के अनुसार अर्चना करनी चाहिये। मौन होकर कालीय पुष्प, बिल्वपत्र, कुरवक पुष्प, कपिला गोघृत युक्त गुग्गुलु अर्पित करे। यह सर्वोत्तम धूप है। यथाशक्ति धूप प्रदान करके कपिला घृत से भरा दीपक अर्पित करे।।२८७-२९०।।

अथवा पूजामात्रेण दीपान्दत्त्वोपहारकम्। नैवेद्यमुपपन्नं च दत्त्वा पुष्पसमन्वितम्॥२९१॥
मुखशुद्धिं ततः कृत्वा दत्त्वा ताम्बूलमादरात्।
प्रदक्षिणनमस्कारौ पूजैवं हि समाप्यते॥२९२॥

तदनन्तर उपहार, नैवेद्य पुष्प अर्पित करे। तदनन्तर मुखशुद्धि के लिये सादर ताम्बूल अर्पित करे। तब प्रदक्षिणा एवं नमस्कार करके पूजा समाप्त करे।।२९१-२९२।।

गीत्यङ्गपञ्चकं पश्चात्तानि विज्ञापयामि ते।
गीतिवाद्यं पुराणं च नृत्यं हासोक्तिरेव च॥२९३॥

नीराजनं च पुष्पाणामञ्जलिश्चाखिलार्पणम्।
क्षमापनं चोद्वसनं प्रोक्तं पञ्चोपचारकम्॥२९४॥
भूषणं च तथा छत्रं चामरव्यजने अपि। उपवीतं च कर्यं षोडशानुपचारकान्॥२९५॥
द्वात्रिंशदुपचारैस्तु यः समाराधयेच्छिवम्।
एकेनाह्ना समस्तानां पातकानां क्षयो भवेत्॥२९६॥

गीत, वाद्य, पुराण वाचन, नृत्य एवं हास्योक्ति ये पांच गीत्यपंचक हैं। नीराजन, पुष्पांजलि, अखिल समर्पण (सब कुछ अर्पण), क्षमा-प्रार्थना तथा उद्वसन ये पंचोपचार हैं। भूषण, छत्र, चामर, व्यजन, यज्ञोपवीत, दास्य भाव भी पूजोपचार हैं। सोलह उपाचारों से भी पूजा की जाती है। जो शिवार्चन बत्तीस उपचारों से करता है, उसके सभी पापों का नाश एक दिवस मात्र में हो जाता है।।२९३-२९६।।

एतच्छुत्वा हनुमतो वचनं प्राह शङ्करः। एवकेतत्कपिश्रेष्ठ यदुक्तं पूजनं मम॥२९७॥
सारभूतमहं तुभ्यमुपदेक्ष्यामि साम्प्रतम्।
आराधनं यथा लिङ्गे विस्तरेण त्वयोदितम्॥२९८॥
मत्पादयुगलं प्राच्र्य पूजाफलमवाप्नुहि। ततः प्राह कपिश्रेष्ठो देवदेवमुमापतिम्॥२९९॥
गुरुणालिङ्गपूजैव नियता परिकल्पिता। तां करोमि पुरा देव पश्चात्त्वत्पादपूजनम्॥३००॥

हनुमान् का कथन सुनकर भगवान् शंकर ने कहा—"हे कपिप्रवर! तुमने जो मेरा पूजन कहा है, अब संक्षेप में तुमसे उसका सारमात्र कहता हूं। तुमने जो विस्तृत लिंगपूजा कहा है, उतना फललाभ तुम मात्र मेरे चरणपूजन से प्राप्त कर सकते हो। देवदेव महादेव का कथन सुनकर कपिप्रवर हनुमान् ने उत्तर दिया—"तथापि गुरु ने तो मुझे लिंगपूजा का ही नित्यत उपदेश दिया है। अतः तदनुसार लिंग पूजा करके तब आपका चरणार्चन करूंगा।"।।२९७-३००।।

इत्युक्त्वेशं नमस्कृत्य शिवलिङ्गार्चनाय च।
सरसस्तीरमागत्य कृत्वा सैकतवेदिकाम्॥३०१॥
तालपत्रैर्विरचितमासनं पर्यकल्पयत्।
प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च समाचम्य समाहितः॥३०२॥
भस्मस्नानमथो चक्रे पुनराचम्य वाग्यतः। देववेद्यामथो चक्रे पद्मं च मनोहरम्॥३०३॥

यह कहकर हनुमान् ने महेश्वर को प्रणाम किया और वे शिवार्चन हेतु सरस्वती नदी के तीर पर आये। उन्होंने वहां बालुका की वेदी का निर्माण करके तालपत्र का आसन बनाया। उन्होंने चरण तथा हाथ प्रक्षालन के उपरान्त समाहित होकर आचमन किया। तत्पश्चात् सावधान चित्त से भस्म का स्नान सम्पन्न किया। तदनन्तर मौनी रहकर पुनराचमन भी किया। उन्होंने इसके पश्चात् देववेदी पर सुन्दर मनोहर पद्म रचित किया।।३०१-३०३।।

अनन्तरं तालपत्रे पद्मासनगतः कपिः।
प्राणानायम्य संन्यस्य शुक्लध्यानसमन्वितः॥३०४॥

प्रणम्य गुरुमीशानं जपन्नासीदतः परम्। अथ देवार्चनं कर्त्तुं यत्रमास्थितवान्कपिः॥३०५॥
पलाशपत्रपुटकद्वयानीतजलं शुचि। शिरः कमण्डलुगतं निधायाग्निनिमन्त्रितम्॥३०६॥
आवाहनादि कृत्वाथ स्नानपर्यन्तमेव च। अथ स्नापयितुं देवमादाय करसम्पुटे॥३०७॥
कृत्वा निरीक्षणं देवपीठं नो दृष्ट्वान्कपिः।
लिङ्गमात्रं करगतं दृष्ट्वा भीतिसमन्वितः॥३०८॥

तदनन्तर वे ताल पत्रासन पर पद्मासनासीन हो गये। उन्होंने तब प्राणायाम करके ईश्वर शंभु के शुक्ल रूप का ध्यान किया। इसके पश्चात् उन्होंने गुरु ईशान को प्रणाम किया तथा मन्त्र जपोपरान्त देवार्चनार्थ परम प्रयत्नरत हो गये। उन्होंने पलाश पत्र के बने दो दोना में शुद्ध जल लाकर अभिमंत्रित किया तथा उसे अपने कमण्डलु में रखा तथा अपना शिर भी सिक्त किया। उन्होंने आवाहनादि करके स्नान पर्यन्त तक का कार्य कर लिया था, तब उन्होंने देवाधिदेव को स्नान कराने हेतु उन्हें अपने हाथ के संपुट में धारण किया तथापि उस समय उनको वहां देवपीठ दिखलाई ही नहीं पड़ा। उनको मात्र लिंग ही हाथ में दीखा! इससे हनुमान् भयभीत हो गये!।।३०४-३०८।।

इदमाह महायोगी किंवा पापं मया कृतम्। यदेतत्पीठरहितं शिवलिङ्गं करस्थितम्॥३०९॥
ममाद्य मरणं सिद्धं न पीठं चागमिष्यति। अथ रुद्रं जपिष्यामि तदायाति महेश्वरः॥३१०॥
इति निश्चित्य मनसा जजाप शतरुद्रियम्।
यदा तु न समायातो महेशोऽथ कपीश्वरः॥३११॥
रुद्रं न्यपातयद्भूमौ वीरभद्रः समागतः। किमर्थं रुद्यते भद्र रुदिते कारणं वद॥३१२॥
तच्छ्रुत्वा प्राह हनुमान्वीरभद्रं मनोगतम्। पीठहीनमिदं लिङ्गं पश्य मे पापसञ्चयम्॥३१३॥

वे महायोगी विचार करने लगे कि "मैंने कौन-सा पाप कर दिया जो पीठरहित लिंग हाथों में है? यदि पीठ नहीं मिला, तब तो आज मेरी मृत्यु निश्चित है। अब मैं रुद्र जप करता हूं। संभवतः पीठ प्राप्त हो जाये।" वे यह तय करके जपनिरत हो गये। वे मन ही मन शतरुद्रीय जपने लगे, तब भी पीठ नहीं लौटा, तब कपीश्वर ने लिंग भूमि पर रख दिया। इतने में वहां वीरभद्र आ गये। उन्होंने पूछा—"हे भद्र! क्यों रो रहे हो? कारण कहो?" यह सुनकर हनुमान् ने वीरभद्र से अपना मनोगत भाव कहा कि—"मैं महापातकी हूं। लिंग पीठ रहित है। मेरे पाप के कारण ऐसा हो गया!"।।३०९-३१३।।

वीरभद्रस्ततः प्राह श्रुत्वा कपिसमीरितम्।
यदि नायाति पीठं ते लिङ्गे मा साहसं कुरु॥३१४॥
दाहयिष्माम्यहं लोकान्यदि नायाति पीठकम्।
पश्य दर्शय मे लिङ्गं पीठ चात्रागतं न वा॥३१५॥
अथ दृष्ट्वा वीरभद्रो लिङ्गे पीठमनागतम्।
दग्धुकामोऽखिलाँल्लोकान्वीरभद्रः प्रतापवान्॥३१६॥

तब वीरभद्र ने हनुमान से कहा—"यदि पीठ नहीं आता, तब लिंगपूजन मत करो। ऐसा साहस मत करो। यदि पीठ नहीं आता है, तब मैं लोकों को दग्ध कर दूंगा। अब आप मुझे दिखायें तथा स्वयं देखें कि लिंग का पीठ आया है अथवा नहीं आया है।" यह कहने के उपरान्त वीरभद्र ने लिंग की ओर देखा परन्तु तब तक पीठ नहीं आया था। यह देखकर प्रतापी वीरभद्र ने समस्त लोकों को दग्ध करने का मन बनाया।।३१४-३१६।।

अनलं भुवि चिक्षेप क्षणाद्दग्धा मही तदा।
अथ सप्ततलान्दग्ध्वा पुनरूद्ध्र्वमवर्तत॥३१७॥
पञ्चोर्ध्वलोकानदहज्जनलोकनिवासिनः। ललाटनेत्रसम्भूतं नखेनादाय चानलम्॥३१८॥
जम्बीरफलसङ्काशं कृत्वा करतले विभुः।
तपः सत्यं च सन्दग्धुमुद्यतोऽभून्मुनीश्वरः॥३१९॥
ततस्तु मुनयो दृष्ट्वा तपोलोकनिवासिनः। दग्धुकामं वीरभद्रं गौतमाश्रममागताः॥३२०॥

तब शक्तिशाली वीरभद्र ने अग्नि को पृथिवी पर निक्षिप्त किया। क्षणमात्र में ही पृथिवी दग्ध हो गई। वह सप्त पातालतलों को दग्ध करके वह अग्नि ऊर्ध्व लोकों को जलाने लगी। तब तक पांच ऊर्ध्वस्थलोक एवं जनलोक तक के निवासी दग्ध हो गये। यह जानकर वीरभद्र ने ललाटस्थ नेत्र से उद्भूत अग्नि को नखों से जम्बीर फल के आकार की बनाकर उससे तपोलोक, सत्यलोक दग्ध करने की इच्छा किया। (जम्बीर फल=जम्बीरी नीबू)। जब तपोलोक वासीगण ने यह जाना, तब वे सभी वीरभद्र की दग्ध करने वाली कामना जानकर गौतम के आश्रम में आ गये।।३१७-३२०।।

न दृष्ट्वा तत्र देवेशं शङ्करं स्वात्मनि स्थितम्। अस्तुवन्भक्तिसंयुक्ताः स्तोत्रैर्वेदसमुद्भवैः॥३२१॥

लेकिन ऋषिगण ने वहां आत्मस्थ महेश्वर को नहीं देखा। इसलिये वे भक्तियुक्त होकर वेदोक्त स्तोत्र से स्तव करने लगे।।३२१।।

ओं वेदवेद्याय देवाय तस्मै शुद्धप्रभाचिन्त्यरूपाय कस्मै।
ब्रह्माद्यधीशाय सृष्ट्ययादिकर्त्रे विष्णुप्रियायार्तिहन्त्रेऽन्तकर्त्रे॥३२२॥
नमस्तेऽखिलाधीश्वरायाम्बराय नमस्ते चरस्थावर व्यापकाय।
नमो वेदगुह्याय भक्तिप्रियाय नमः पाकभोक्त्रे मखेशाय तुभ्यम्॥३२३॥
नमस्ते शिवायादिदेवाय कुर्मो नमो व्यालयज्ञोपवीतप्रधर्त्रे।
नमस्ते सुराबिन्दुवर्षापनाय त्रयीमूर्तये कालकालाय नाथ॥३२४॥

ऋषिगण कहते हैं—आप वेदों से जानने योग्य देव हैं। आप शुद्ध प्रभा तुल्य अचिन्त्य रूप देवता हैं। आप ब्रह्मा के भी स्वामी, सृष्टि प्रभृति कर्त्ता, विष्णुप्रिय, आर्त्तिहारी, संसार का अन्त करने वाले अखिल के अधीश्वर दिगम्बर प्रभु हैं। आपको नमस्कार! आप स्थावर तथा चर, सब में व्याप्त, वेदों में अप्रमेय नाम से प्रसिद्ध भक्त प्रिय, हविर्पाक भोक्ता, यज्ञेश, शिव, आदिदेव, व्याल यज्ञोपवीती, चन्द्रधारी, कालमूर्त्ति कालनाथ हैं। आपको नमस्कार! आप सुराविन्दु वर्षा करने वाले त्रयी मूर्त्ति हैं। आपको नमस्कार!।।३२२-३२४।।

धरित्रीमरुद्व्योमतोयेन्दुवह्निप्रभामण्डलात्माष्टधामूर्तिधर्त्रे ।
शिवायाशिवघ्नायवीराय भूयात्सदा नः प्रसन्नो जगन्नाथकेज्यः॥३२५॥
कलानाथभालाय आत्मा महात्मा मनो ह्यग्रयानो निरूप्यो न वाग्भिः।
जगज्जाड्यविध्वंसनो भुक्तिमुक्तिप्रदः स्तात्प्रसन्नः सदा शुद्धकीर्तिः॥३२६॥
यतः सम्प्रसूतं जगज्जातमीशात्स्थितं येन रक्षावता भावितं च।
लयं यास्यते यत्र वाचां विदूरे स वै नः प्रसन्नोऽस्तु कालत्रयात्मा॥३२७॥
यदादिं च मध्यं तथान्तं न केऽपि विजानन्ति विज्ञा अपि स्वानुमानाः।
स वै सर्वमूर्तिः सदा नो विभूत्यै प्रसन्नोऽस्तु किं ज्ञापयामोऽत्र कृत्यम्॥३२८॥

पृथिवी, वायु, गगन, जल, चन्द्र, तेजः, प्रभा तथा मण्डलरूपी अष्टमूर्त्तिधारी, शिवरूप, अशिवनाशक, वीर! आपको नमस्कार! आप जगन्नाथ सदा प्रसन्न हों। ललाटेन्दुधारी, आत्म एवं महात्मरूप, मनःतीत, अनिर्वचनीय, जाड्य विध्वंसक, भुक्ति-मुक्तिदाता, विमलयश वाले देव! आपको नमस्कार! आप प्रसन्न हो जायें। जिनके द्वारा जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-संहार होता है, जो वाणी से अगोचर हैं, वे त्रिकालात्मा हम पर प्रसन्न हो जायें। आपके आदि-मध्य-अन्त का कोई ज्ञाता ही नहीं है। विज्ञजन भी केवल आपके सम्बन्ध में अनुमान ही लगा पाते हैं, ऐसे आप सर्वमूर्त्ति हम पर प्रसन्न होकर हमें ऐश्वर्यदान करें और अधिक हम आपसे क्या कहें?॥३२५-३२८॥

एतां स्तुतिमथाकर्ण्य भगनेत्रप्रदः शिवः।
विष्णुमाह मुनीनेतानानयस्व मदन्तिकम्॥३२९॥
अथ विष्णुः समागत्य तपोलोकनिवासिनः।
मुनीन्सांत्वय्य विश्वेशं दर्शयामास शङ्करम्॥३३०॥
तानाह शङ्करो वाक्यं किमर्थं यूयमागताः।
तपो लोकाद्भूमिलोकं मुनयो मुक्तिकिल्बिषाः॥३३१॥
तच्छ्रुत्वा शूलिनो वाक्यं प्रोचुस्ते मुनिसत्तमाः।
देव द्वादशलोकानां दृश्यन्ते भस्मराशयः॥३३२॥
स्थितमेकं वनमिदं पश्य तल्लोकसंक्षयम्।
तच्छ्रुत्वा गिरिशः प्राह तान्मुनीनूद्ध्र्वरेतसः॥३३३॥
भूर्लोकस्य तु सन्दाहे पातालानां तथैव च।
सन्देहो नास्ति मुनयः स्थितानां नो रहः स्थले॥३३४॥
ऊद्ध्र्वपञ्चकलोकानां दाहे सन्देह एव नः।
कथमङ्गारवृष्टिश्च कथं नो वा महाध्वनिः॥३३५॥

यह स्तुति सुनने के अनन्तर भग देव को नेत्र प्रदाता शिव ने विष्णु से कहा—"इन मुनिगण को मेरे

निकट लायें।" केशव ने तब तपोलोकवासी मुनिगण को आश्वस्त किया तथा उनको विश्वेश शंकर का दर्शन कराया। शंकर ने कहा—"हे निष्पाप मुनिगण! आप लोगों का तपोलोक से यहां आगमन का क्या कारण है?" यह सुनकर मुनियों ने कहा—"हे देव! द्वादशलोक भस्मीभूत हो गये। एक हमारा लोक शेष है। वह भी नष्टोन्मुख है।" तब गिरीशदेव ने उन ऊर्ध्वरिता मुनिगण से कहा—"भूलोक से पाताल तक तो दग्ध हो सकता है, यह निःसंदिग्ध है, तथापि ऊर्ध्वस्थ पांच लोकों के दग्ध होने में मुझे संदेह है। वहां महा अग्नि अंगारवर्षा तथा महाध्वनि कैसे होगी?।।३२९-३३५।।

तदाकर्ण्य विभोर्वाक्यं शङ्करस्य मुनीश्वराः।
प्रोचुः प्राञ्जलयो देवं ब्रह्मादिसुरसङ्गतम्॥३३६॥

भीतिरस्माकमधुना वर्तते वीरभद्रतः। स एवाङ्गारवृष्टिं च पिपासुरपिबद्विभोः॥३३७॥

प्रभु शंकर का कथन सुनकर ऊर्ध्वरिता मुनिगण ने करबद्ध होकर ब्रह्मा आदि तथा महादेव से कहा—"हे भगवान्! हमें तो भय वीरभद्र का है! इस अंगार वर्षा के कारण हे विभु! वे ही हैं।"।।३३६-३३७।।

देवोऽथ वीरमाहूय किं वीरेत्यब्रवीद्वचः।
वीरोऽप्याह कपेर्लिङ्गे पीठाभावादिदं कृतम्॥३३८॥

तब देवदेव शिव ने वीरभद्र को बुलाकर कहा—"क्या मुनिगण का कथन सही है?" तब वीरभद्र ने उत्तर दिया—"जी हां! हनुमान् को लिंगपीठ नहीं मिली। तभी मुझे यह कार्य करना पड़ा।"।।३३८।।

तच्छ्रुत्वाह शिवो देवो मुनींस्तान्भयविह्वलान्।
कपेश्चित्तं परिज्ञातुं मया कृतमिदं द्विजाः॥३३९॥
मा भैष्ट भवतां सौख्यं सदा सम्पादयाम्यहम्।
इत्युक्त्वा तु यथापूर्वं देवदेवः कृपानिधिः॥३४०॥
दग्धानप्यखिलाँल्लोकान्पूर्वतः शोभनान्विभुः।
कल्पयामास विश्वात्मा वीरभद्रमथाब्रवीत्॥३४१॥
साधु वत्स यतो भद्रं भक्तानामीहसे सदा।
ततस्ते विपुला कीर्तिर्लोके स्थास्यति शाश्वती॥३४२॥

वीरभद्र का कथन सुनकर प्रभु महेश्वर ने भयविह्वल मुनिगण से कहा—"हे द्विजो! मैंने कपि के चित्त का परीक्षण करने के लिये यह कार्य किया। आप सब भय न करें। मैं आप लोगों का सुख सदा बनाये रखूंगा। यह कहकर देवदेव कृपानिधि ने सभी दग्ध लोकों को भी यथापूर्व कर दिया। वे पुनः शोभायमान हो गये। तब विश्वात्मा शिव ने वीरभद्र से कहा—"हे वत्स! साधु! तुम सदा भक्तों की हित कामना करते हो। तुम्हारी विपुल शाश्वत कीर्त्ति लोकों में स्थित रहेगी।"।।३३९-३४२।।

इत्युक्त्वालिंग्य शिरसि समाघ्राय महेश्वरः। ताम्बूलं वीरभद्राय दत्तवान्प्रीतमानसः॥३४३॥
अथासौ हनुमानीशपूजनं कृतवान्यथा। समाप्तायां तु पूजायां हनुमान्प्रीतमानसः॥३४४॥
एकं वनचरं तत्र गन्धर्वं सविपञ्चकम्। ददर्श तमथाभ्याह वीणा मे दीयतामिति॥३४५॥

गन्धर्वोऽप्याह न मया त्याज्या वीणा प्रिया मम।
ममापीष्टेह गन्धर्व वीणेत्याह कपीश्वरः॥३४६॥
यदा न दत्ते गन्धर्वो वल्लकीं कपये प्रियाम्।
तदा मुष्टिप्रहारेण गन्धर्वः पातितः क्षितौ॥३४७॥

यह कहकर महेश्वर ने वीरभद्र का आलिंगन किया तथा उनका मस्तक सूंघा। प्रीतिपूर्वक वीरभद्र को एक ताम्बूल महेश्वर ने प्रदान किया। अन्ततः हनुमान ने भी शिवपूजन सम्पन्न कर दिया। पूजा के उपरान्त प्रसन्न मन हनुमान् ने एक गन्धर्व को वीणावादन करते देखकर उससे वीणा मांगा, तथापि गन्धर्व का कथन था कि "वीणा मुझे अत्यन्त प्रिय है। मैं इसका त्याग नहीं करूंगा। जब गन्धर्व ने वीणा हनुमान् को नहीं दिया, तब हनुमान ने मुष्ठिप्रहार से उसे निहत तथा भूपतित कर दिया।।३४३-३४७।।

वीणामादाय महतीं स्वरतन्तुसमन्विताम्।
हनुमान्वानरश्रेष्ठो गायन्प्रागाच्छिवान्तिकम्॥३४८॥

अब हनुमान् उस महती वीणा को लेकर गायन करते उस स्वरतन्तुयुक्त वीणा के साथ महेश्वर के पास आये। वहां वानर प्रवर हनुमान् शिव के समीप गायन करने लगे।।३४८।।

ततो गानेन महता प्रसाद्य जगदीश्वरम्। बृहतीकुसुमैः शुद्धैर्देवपादावपूजयत्॥३४९॥
ततः प्रसन्नो विश्वात्मा मुनीनां सन्निधौ तदा।
दैत्यानां देवतानां च नृपाणां शङ्करोऽपि च॥३५०॥
तस्मै वरमथ प्रादात्कल्पान्तं जीवितं पुनः।
समुद्रलङ्घने शक्तिं शास्त्रज्ञत्वं बलोन्नतिम्॥३५१॥
एवं दत्तं वरं प्राप्य महेशेन महात्मना। प्रत्यक्षं मम विप्रेन्द्र हनुमान्हर्षमागतः॥३५२॥

उन्होंने वहां महान् संगीत तथा गायन से जगदीश्वर को प्रसन्न किया तथा शिवचरणों का पूजन बृहती पुष्पों से किया। इस पर प्रसन्न होकर शिवात्मा शंकर ने मुनिगण, दैत्य, देवगण तथा राजाओं के सामने हनुमान् को वरदान दिया। "तुम कल्पान्त तक जीवित रहोगे। तुमको समुद्रलंघन क्षमता, शक्ति, शास्त्रज्ञत्व तथा नित्य बल की उन्नति प्राप्त होगी।" हे विप्रवर! महात्मना महेश का यह वर पाकर हनुमान् मेरे सामने ही हर्षित हो उठे।।३४९-३५२।।

समस्तभूषासुविभूषिताङ्गः स्वदीप्तिमन्दीकृतदेवदीप्तिः।
प्रसन्नमूर्तिस्तरुणः शिवांशः सम्भावयामास समस्तदेवान्॥३५३॥

समस्त अंगों में आभूषण से विभूषित होकर अपनी दीप्ति से देवताओं की दीप्ति को भी मन्द करने वाले, प्रसन्न मूर्त्ति तरुण शिवांश हनुमान समस्त देवताओं के समक्ष अतीव सुशोभित हो गये।।३५३।।

आज्ञप्तो हनुमांस्तत्र मत्सेवायै मुनीश्वरः। महेशेनाहमप्येनं शशिमौलिमवैमि च॥३५४॥
किं बहूक्तेन विप्रर्षे यादृशो वानरेश्वरः।
बुद्धौ न्याये च वै धैर्ये तादृगन्योऽस्ति न क्वचित्॥३५५॥

इति ते सर्वमाख्यातं चरितं पापनाशनम्।
पठतां शृण्वतां चैव गच्छ विप्र यथासुखम्॥३५६॥

(श्रीराम कहते हैं)—हे विप्रवर! एवंविध महात्मा महेश से वर मिलने के कारण हनुमान मेरे सामने ही आनन्दित हो उठे थे। शंकर ने उनको मेरी सेवार्थ आज्ञा दिया। हे मुनीश्वर! तभी से मैं उनको शिववत् ही देखता हूं। हे विप्रर्षि! अधिक क्या कहा जाये! बुद्धि, न्याय में तथा धैर्य धारण में हनुमान् की तुलना में अन्य कोई नहीं है। इस हनुमत् चरित का पाठ करने तथा श्रवण करने से पाप क्षयीभूत होते हैं। मैंने इसे कह दिया। अब आप सुख के साथ जायें।।३५४-३५६।।

तच्छ्रुत्वा रामभद्रस्य रघुनाथस्य धीमतः।
वचनं दक्षिणीकृत्य नत्वा चागां यथागतः॥३५७॥
एतत्तेऽभिहितं विप्र चरितं च हनूमतः। सुखदं मोक्षदं सारं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥३५८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे हनुमच्चरित्रं नाम एकोनाशीतितमोऽध्यायः।।७९।।

हे विप्रप्रवर नारद! श्रीमान् रघुकुल तिलक रामचन्द्र का यह उपदेश सुनकर मैंने उनकी प्रदक्षिणा किया तथा उनको प्रणामोपरान्त मैंने वहां से प्रस्थान कर दिया। हे विप्र! नारद! मैंने आपसे यह सुखकर एवं मोक्षप्रद चरित्र कह दिया। अब आपको और क्या श्रवण करना है?।।३५७-३५८।।

।।७९वां अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ अशीतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण सम्बन्धित मन्त्र की साधना का वर्णन

सूत उवाच

श्रुत्वा तु नारदो विप्राः कुमारवचनं मुनिः। यत्पप्रच्छ पुनस्तच्च युष्मभ्यं प्रवदाम्यहम्॥१॥
कार्तवीर्यस्य कवचं तथा हनुमतोऽपि च। चरितं च महत्पुण्यं श्रुत्वा भूयोऽब्रवीद्वचः॥२॥

सूत जी कहते हैं—हे विप्रगण! सनत्कुमार का वाक्य सुनकर नारद ने उनसे जो कुछ प्रश्न किया था, वह मैं आप लोगों से कहता हूं। कार्त्तवीर्य कवच तथा हनुमत्कवच और हनुमान् के पुण्यप्रद चरित्र का श्रवण करके नारद ने कहा—।।१-२।।

नारद उवाच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठ त्वयातिकरुणात्मना। श्रावितं चरितं पुण्यं शिवस्य च हनूमतः॥३॥